राजसी

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला—हिन्दी-ग्रन्थाङ्क—११३

रा
ज
सी

देवेशदास, आई० सी० एस०

भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला
सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन

प्रथम संस्करण
१९६० ई०
मूल्य ढाई रुपये

प्रकाशक
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ,
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

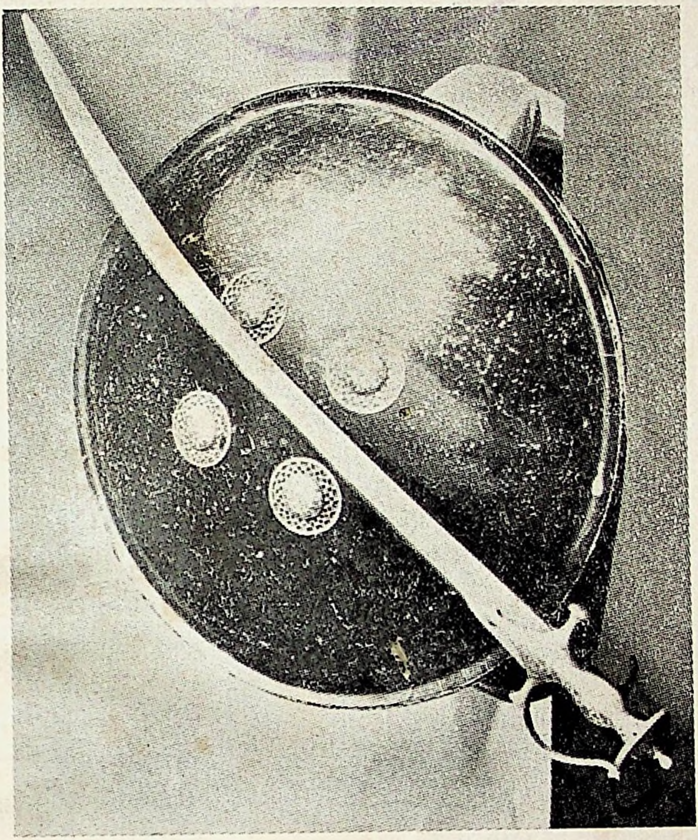
मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय, वाराणसो

आदरणीय

पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्तको

मातृभूमिकी सेवामें जिनका जीवन स्वयं राजसी है

१० सितम्बर, १६५६



लेखकको भेंट की गई सिशोदियोंकी प्राचीन ढाल और तलवार

इस पुस्तकके विषयमें

सम्भवतः विश्वके इतिहासमें कोई भी लेखक अपनी रचनाओंके लिए इस प्रकार पुरस्कृत नहीं किया गया जिस प्रकार श्री देवेशदास किये गये हैं। मेवाड़के महाराणाने एक दरबारमें महाराणा प्रतापके समयके सिसोदिया राजवंशजों द्वारा युद्धोंमें व्यवहृत एक तलवार और ढाल श्री दास महोदयको उनकी 'राजवाड़ा' पुस्तकपर पुरस्कार रूपमें भेंट करके सम्मानित किया और उनका अभिनन्दन करते हुए कहा "आपकी लेखनी तलवारसे भी अधिक बलशाली हो।" 'राजसी' राजस्थानपर देवेश बाबूकी दूसरी कृति है।

श्री डी. एल. रायके प्रख्यात बंगाली साहित्यिक पत्र 'भारतवर्ष' ने इस पुस्तकके विषयमें लिखा है कि "'राजसी' पढ़कर अनुभव हुआ कि धन्य है यह मानव जन्म जिसमें मानवताकी सम्पदाका इतना गौरवमय इतिहास है। साहित्यिक रम्यता और ऐतिहासिक तथ्यके अमृत रसायनसे दीप्त साधनकी प्रचुरता इस पुस्तकमें पर्याप्त रूपसे है"।

'राजसी'में राजपूती शौर्य, वीरता और रोमांसकी अभूतपूर्व कथाओंको इतिहासके आलोकमें छानबीन कर अभूतपूर्व शैलीमें कहा गया है। 'अमृतबाजार पत्रिका'के शब्दोंमें उज्ज्वल हास्य, चरित्रोंके सजीव चित्रण और अति मानवीय कथाओंसे इसकी रम्य रचनाएँ महान् गुणों और शाश्वत आवेदनसे पूर्ण हो उठी हैं। और युगान्तरके कथनानुसार "राज दरबारकी

गुप्त कथाएँ करुण समवेदना एवं उज्ज्वल रसमयताके साथ उद्घाटित की गई हैं।"

पृथ्वीराज और संयुक्ता, महावतखाँ, नूरजहाँ, बाप्पा रावल तथा उनकी ग्राम्य सखियों, रूपमती और बाजबहादुर, होली पर्वमें भील किशोरियाँ, मरुभूमिमें वर्षा-मंगलके उत्सव इत्यादिकी विशिष्ट तथा सौन्दर्य्यसे भरपूर भावनामयी एवं सुकुमार कहानियाँ केवल हृदयके अतल-तलको ही स्पर्श नहीं करती हैं किन्तु सुकुमार अश्रुओंमें प्लावित कर देती हैं। प्रमुख बंगाली साहित्यिक पत्रिका देशके शब्दोंमें हमें 'राजसी' में एक उपन्यासका तीव्र प्रवाह, चरित्र-चित्रणका सुघड़-सौष्ठव और विभिन्न नाटकीय उपाख्यानोंके दर्शन होते हैं।

इन सबके अतिरिक्त अपनी इस सद्यः प्राप्त स्वतन्त्रता-में निर्माणकारी देशभक्ति तथा राजपूतोंकी ओजपूर्ण वीरता और शौर्यका सामान्य भारतवासीके नित्य-प्रतिके जीवनमें अवतरित होनेकी आवश्यकताके कारण 'राजसी' अत्यधिक विशिष्ट हो गई है। जैसा हिन्दुस्तान स्टैण्डर्डने कहा है "'राजसी'ने प्रेम और शौर्यको राजपाटमें आसीन किया है और आजके सामान्य नागरिकको उनमें अपना भाग लेनेको आमन्त्रित किया है, क्योंकि वर्तमान युगमें उस शौर्यमय अतीतके राजा और रानीका समावेश उसीमें हुआ है।"

*

राजसी

"आमार सोनार बंगला,
आमि तोमाय भालोबाशि"

दोपहर भर विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरके गीतकी ये पंक्तियाँ मनमें गूँजती रहीं। श्यामल मेघाच्छादित बंगालमें और धूलधूसरित बालुकाच्छादित राजस्थानमें कितना अधिक वैषम्य है। इसीसे यहाँ आनेपर गीतकी यह कड़ी बार-बार मेरे मनमें गूँज रही है। और मैं सोचने लगता हूँ कि हमारा भारत कितना वैचित्र्यमय है। केवल बंगाल ही नहीं, सच बात तो यह है कि :—

"आमार सोनार भारत,
आमि तोमाय भालोबाशि।"

मारवाड़में सिरोही तक पहुँच गया। जहाँ तक दृष्टि जाती थी सिर्फ़ बालूका असीम सागर धू-धू करता दिखाई देता था। ट्रेनके चढ़े हुए शीशोंसे झाँककर बाहर थोड़ा-बहुत देखा जा सकता था। रह-रहकर अंधड़ चल पड़ता था। ऐसा लगता था मानो बालुका-राशि नया प्राण पाकर मारे प्रसन्नताके लोट-पोट हो रही हो। जब-जब अंधड़ चलता था तब ऐसा लगता था कि आरब्योपन्यासका दैत्य बोतलसे छूटकर निकल भागा हो, और आकाश तक लम्बा होकर गहरी साँसें छोड़ रहा हो, और चारों ओर छा गया हो। दोपहरको भी आँधी चारों ओर अँधेरा करती हुई छाई हुई थी। उसके बीचमें हमारी ट्रेन फिस-फिस करती हुई चली जा रही थी। कम्पार्टमेण्टमें केवल हम दो प्राणी किसी तरह मरुभूमिमें झुलसते

हुए चले जा रहे थे। खिड़कियाँ बन्द होनेके कारण आँधीका दैत्य बार-बार खिड़कियोंसे टकराकर श्रापके रूपमें अग्निका ताप दे जाता था।

नहीं ! इससे तो कालवैशाखी कहीं अच्छी हैं। एक मतवाले मद्यपीकी तरह झूमती हुई हवा आती है और पागलकी तरह सब कुछ उलट-पुलट कर देतीं है। खुशीके मारे डगमग करता हुआ आकाश स्निग्ध हो जाता है। वृक्षोंकी पत्तियोंसे जलद-रागिनी बज उठती है। नारियल और ताड़के वृक्ष ताल-तालपर झूमकर नाचने लगते हैं। हवाके झोंके किसी दैत्यके समान दीर्घश्वास नहीं छोड़ते हैं, किन्तु मुट्ठी भर-भरकर पत्तों और फूलोंका उपहार देते हैं। उसके बाद गरजकर धीरेसे वर्षा हो जाती है। शरीरकी ज्वाला और मनका ताप धुल जाता है। ताज़ी भीगी मिट्टीकी सुगन्ध कितनी भली लगती है। समस्त फ्रांसके सेंटसे उसकी तुलना नहीं की जा सकती।

बंगालकी कालवैशाखीसे राजस्थानकी आँधीकी क्या तुलना ! कैसा वैचित्र्य है !!

सोचते-विचारते मनमें यह बात आई कि मारवाड़के राजा मालदेवके साथ युद्धमें हारके निकट पहुँचकर किसी तिकड़मबाजीसे अपनेको सँभाल लेनेके बाद शेरशाहने कहा था—"एक मुट्ठी बाजरेके लिए मैं हिन्दोस्तानकी सल्तनत हार ही बैठा था।"

अकस्मात् मैं थोड़ा ज़ोरसे गुनगुना उठा—"**आमार सोनार बंगला–।**"

सामने बैठे हुए व्यक्तिके मुखपर हँसी खेल उठी। परिष्कृत बंगलामें वे बोले—"नमस्कार, आप निश्चय ही बंगालके रहनेवाले हैं ?"

वे व्यक्ति मारवाड़के थे। बातचीतके सिलसिलेमें उन्होंने एक बात अच्छी तरहसे समझाई। यदि राजपूतानेके व्यवसायी बंगालमें न पहुँचते तो यहाँका और भी अधिक रुपया विदेशी वणिकोंके हाथोंमें पड़कर विदेशको चला जाता। क्लाइव स्ट्रीटके शोषणको रोककर देशका रुपया देश ही में रखनेमें सहायता दी केवल बड़बाजारने।

ये सज्जन बंगालके अतीतकी सम्पत्तिकी कहानी सुनना चाहते थे। इनका प्रश्न मुझे बहुत रुचा। जमकर उन्हें बंगालकी रूपकथा सुनाने लगा। बार-बार यहाँ राज-स्थानी रूपकथाका सन्धान करने आया हूँ। प्रत्येक बार हरऋतुमें बहुत सूक्ष्मतासे, इस प्रदेशको देखा है। अपने मनकी खिड़की-को हमेशा खोलकर रखा है। बार-बार राजपूतोंका अतिथि होकर रहा हूँ। सोते-जागते, उठते-बैठते यहाँ तक कि स्वप्नमें भी उनके साथ घूमा-फिरा हूँ। ऐसी मनःस्थितिमें यदि कोई कहे—इस बार अपने प्रदेशकी कथा सुनाओ—तो मन खुशीके मारे ज़रूर नाच पड़ेगा।

नहीं, मैं बंगालियों द्वारा लिखी हुई पुस्तकोंसे 'सोनार बंगला' का परिचय नहीं दूँगा। किसी अन्य भारतीय द्वारा लिखी हुई पुस्तकोंसे भी नहीं। बंगालके अतीतका परिचय मैं उन ठेठ विदेशी लोगोंके वर्णनसे दूँगा जिन्हें इस देशको प्यार करनेका कोई कारण नहीं था।

अत्यन्त मनोयोगसे सुननेके लिए मारवाड़ी सज्जन अपना सिर थोड़ा आगे झुकाकर बैठ गये। उनके दोनों कानोंमें दो बड़े-बड़े हीरे झकमका रहे थे।

उस समय यूरोपको भारतवर्षके बारेमें कोई जानकारी न थी। वे मिस्रदेशको पृथिवीकी सबसे सुन्दर और रत्न-प्रसविनी भूमि मानते थे। किन्तु बंगालको दो बार अत्यन्त सूक्ष्मतासे देख लेनेपर बर्नियरको स्वीकार करना पड़ा कि जो सम्मान मिस्रको दिया गया है, उसका वास्तविक अधि-कारी बंगाल है।

बर्नियरसे फ्रांसमें जो प्रश्न किये गये थे उनमेंसे अधिकांश यह जान-कारी प्राप्त करनेके लिए थे, कि बंगाल कितना सुन्दर, उर्वर और धनी देश है।

उस समय बंगाल मुग़ल साम्राज्यके पन्द्रह सूबोंमेंसे एक सूबा मात्र था। तब भी उसके धन और सौन्दर्य्यकी ख्याति लोगोंकी ज़बानी फ्रांस तक पहुँच गई थी, यह कोई अत्यन्त सामान्य बात नहीं थी।

आज बंगालमें आये दिन दुर्भिक्ष पड़ते हैं, चावलका राशन और दाम ऐसे कि हाथ न रखा जा सके। यह देखकर आजकल कोई कैसे विश्वास कर लेगा कि कभी इस प्रदेशमें इतना अधिक चावल होता था कि केवल आस-पड़ोसके प्रदेशोंमें ही नहीं, किन्तु नदी-पथसे बिहार तक और समुद्र-पथसे दक्षिण भारतके अन्तिम छोर तक और इसके भी आगे सिंहल तथा भारतीय महासागरके मालद्वीप तक, बाक़ायदा चालान करके भेजा जाता था। हमारे पूर्व-पुरुष जावा या उत्तर प्रदेशकी चीनीके आसरे चायका प्याला हाथमें लेकर नहीं बैठते थे। यहाँसे चीनी केवल दाक्षिणात्य या बम्बईके अंचल तक ही नहीं, किन्तु सुदूर अरब और फ़ारस तक भेजी जाती थी।

और मिठाई? उसकी बात कहनेसे तो मिठाइयोंके राजा कलकत्ताकी छाती आज भी फूल उठेगी। दक्षिण और पूर्व बंगालकी मिठाई दोनों हाथों-से बटोरकर पुर्तगाली लोग देश-विदेशमें खूब लम्बा-चौड़ा व्यापार करते थे। शहद तो बहुत बड़ा चालानी माल था ही।

अभी उस दिन तक हमारे भाग्यमें यथेष्ट भात न जुट पानेके कारण उसकी जगह सरकारी राशनमें थोड़े आटेका बन्दोबस्त किया गया था। उसके मिलनेमें कितनी आपत्ति, और खानेपर पेटको कितनी विपत्ति झेलनी पड़ी, उसकी कोई सीमा नहीं। कमज़ोर पेट वाले बंगालीका काम किसी तरह उल्टे-सीधे चावलसे तो चल जाता है, किन्तु आटा किसी तरह नहीं चलता है। किन्तु उस युगमें हम केवल अच्छा आटा ही नहीं तैयार करते थे, किन्तु अपना काम चला लेनेके बाद भी इतना अच्छा और सस्ता बिस्कुट तैयार करते थे कि अंगरेज़, पुर्तगाली और डच उन बिस्कुटोंको विदेशी जहाज़ोंमें भरकर बाहर भेजते थे।

अब आप मुग़लों और ईसाइयोंके खानेकी चीज़ोंके बारेमें सुनिए। उस समयके बावर्ची जानते थे कि एक रुपयेकी पचास मुर्गियाँ दे देनेपर फिरंगी मारे खुशीके ऐसे नाच उठते हैं, मानो कोई क़िला फतह कर लिया

हो। बत्तख, कबूतर और भेड़ भी बहुत सस्ते थे। हर प्रकारका मांस नमक लगाकर विदेशी जहाज़ों द्वारा चालान किया जाता था। ताज़ी खिंची हुई और पुरानी शराब भी बहुत अधिक मात्रामें चालान की जाती थी।

इतना सुख-मौजसे खाने और बेचनेके सुखके लिए झुण्ड-के-झुण्ड विदेशी जातिके लोग बंगालमें लपक कर आते थे। जिसे कहीं और ठिकाना नहीं मिलता था, वह भी यहीं आकर आश्रय लेता था। रवीन्द्रनाथकी भाषामें—

"के काँदे क्षुधाय, जननी शुधाय,
आये तोरा सबे छूटिया।"

सब विदेशी भ्रमणकारियोंने लिखा है कि और किसी भी देशमें विदेश-से व्यापार करनेके लिए इतनी अधिक और हर तरहकी चीज़ें तैयार नहीं होती थीं। सूती और रेशमी वस्तुओंके लिए बंगाल केवल मुग़ल साम्राज्य या हिन्दुस्तानका ही नहीं एशियाके अन्यान्य समस्त देशोंका, यहाँ तक कि यूरोप तकका, भाण्डार था। मोटा और महीन, सादा और रंगीन सूती कपड़ा इतना अधिक तैयार होता था जिसकी कोई तुलना नहीं। उस युगमें दुर्गम जापान तक उसका चालान किया जाता था। रेशमी कपड़े और चमड़ेका सामान भी बहुत तैयार होता था। रेशमी सामान यहाँसे किन-किन देशोंको जाता था इसका कोई हिसाब ही नहीं। और वह जितना उम्दा होता था उतना ही सस्ता भी।

शोरा और अन्यान्य खनिज पदार्थ खूब भारी हाथोंसे विदेशोंको चालान किये जाते थे। इसका व्यापार बंगालको सोनेसे मढ़ रहा था। मिर्च, मोम, गोला इत्यादिका तो कहना ही क्या।

आज यदि अलीगढ़से मक्खन और बिहारसे घी न पहुँचे तो बंगालीको बग़ैर घी और मक्खनके जीवन काटना पड़ेगा। किन्तु एक समय था, जब

'सोनार बंगाल'में इतना प्रचुर घी होता था कि जहाज़ोंपर लादकर विदेशों-को भेजा जाता था।

इटालियन भ्रमणकारी मनुच्ची उस समय भारतवर्षमें था और उसने सारे देशको देखा था। उसने भी लिखा है कि ढाकाके चारों ओर पूर्वी-बंगालसे बहुत अधिक सस्ता और प्रचुर परिमाणमें सुन्दर सूती और रेशमी कपड़ा तैयार होकर यूरोप और अन्यान्य देशोंको जहाज़ों द्वारा चालान करके भेजा जाता है। पश्चिम बंगालके राजमहलके अंचलमें बहुत महीन कपड़ा और प्रचुर चावल होता था।

दो सौ वर्ष पूर्व कलकत्तेमें रहकर रावर्ट अर्मने "मुग़ल साम्राज्यके कुछ ऐतिहासिक प्रसंग" नामक पुस्तक लिखी थी। उस समय बंगालमें सूती कपड़ेका निर्माण जातीय शिल्पकला थी। उस समय बंगालमें मुश्किलसे ही कोई ऐसा गाँव था जहाँका प्रायः प्रत्येक बालक, बूढ़ा और कन्या सूत बुनना न जानती हो। विलासिताके चूड़ामणि मुग़ल सम्राट् और उनकी बेगमें तथा परिवारके अन्य लोगोंके व्यवहारका समस्त वस्त्र ढाकामें तैयार होता था। उसकी बुनाई इतनी महीन होती थी कि जो कपड़ा यूरोपीय या अन्य किसीके लिए तैयार होता था, उससे उसका दाम दस-गुना अधिक होता था। शताब्दियोंके वाद शताब्दियों तक यही क्रम चलता रहा।

जगत्की आलोक नूरजहाँ ढाकाके मस्लिनकी इतनी भक्त थी कि उसके समयसे मुग़ल बादशाहोंके हरममें और अमीरोंके घरोंमें उसी कपड़े-का रिवाज़ ज़ोरोंसे चल पड़ा था। उस युगके रुपयोंके हिसाबसे एक दस हाथ लम्बे, दो हाथ चौड़े और वज़नमें नौ सौ ग्रेन या पाँच रुपये बराबर आबे-रवाँके दाम चार सौ रुपये होते थे। आजकलके हिसाबसे उसके दाम हुए तीन हज़ार रुपये।

सम्राट् औरंगज़ेबने जामदानीके मस्लिनके एक थानका आर्डर दिया था। दाम दिये थे उस समयके ढाई सौ रुपये।

सेठजी उस समय अपनी महीन धोतीका किनारा उँगलियोंमें लपेट रहे थे। मुझे यह देखकर कुछ ऐसा सन्देह हुआ कि शायद वे बंगालकी इस महीन और मुलायम सम्पदाका इतिहास सुनकर हैरान हो गये हैं। इससे मैं दूसरी तरहकी बातें करने लगा।

यह मत समझ बैठिएगा कि बंगाल केवल वस्त्र मात्रकी व्यवस्था ही में व्यस्त रहता था। इस देशसे जो यह इतना ढेरों शोरा चालान किया जाता था, आप जानते हैं वह किस लिए? बारूद तैयार करनेके लिए। यदि यहाँसे शोरा न जाता तो युद्ध-विद्यामें कोई आधुनिकता या कोई नवीन आविष्कार न हो पाता। और इसी बारूदकी कृपासे ही तो यूरोपके लोग यहाँ खूँटा गाड़कर बैठे थे।

और युद्ध जहाज़? वे भी यहाँ तैयार होते थे। युद्धके जहाज़ और वाणिज्यके जहाज़ यहाँसे समस्त हिन्दुस्तान होते हुए फ़ारस, अरब, चीन और समस्त दक्षिण सागर तक आते-जाते थे। अँग्रेज़ी जहाज़के कप्तान टामस बाउरीने इस देशमें दस वर्ष व्यतीत कर अपनी "बंगसागरके चारों ओरके देशोंका भूगोल" पुस्तकमें यह बात लिखी है।

सेठजी विस्मयसे आँखें फाड़कर देखने लगे—"क्या श्रीमान्‌जी, आप लोग भी युद्ध करते थे?"

मैंने हँसकर उनकी शंकाको दूर किया—"हमारे देशमें बंगालका इतिहास ठीक तरहसे पढ़ा नहीं गया। नहीं तो सबको यह मालूम हो जाता कि बंगाली अधिक दिनोंतक दिल्लीके सामने सिर झुकाकर नहीं रहे। उन्होंने अपना मस्तक सर्वदा ऊँचा रखा। स्वाधीनताकी उत्कट चाह बंगालकी मिट्टीमें भरी पड़ी थी। इसीसे दिल्लीसे भी पठान सूबेदार बंगाल जाकर उसकी स्वाधीनताकी ध्वजा ऊँची कर देते थे। दूसरा कोई उपाय नहीं था। क्योंकि, वैसा न करनेपर वहाँके लोग सूबेदारको अलग ढकेलकर, स्वाधीनताकी घोषणा कर देते थे।"

किन्तु, युद्धमें हमलोग धर्मयुद्धकी नीतिपर चलते थे। सिलवियेरो नामका एक पुर्तगाली जल-योद्धा था। बंगालसे गुजरात जाने वाले जहाज़ोंको वह बीचमें रोककर लूट लेता था, और जहाज़के लोगोंको बन्दी बना लेता था, और मनमानी रक़म पानेपर अपनी ख़ुशीसे छोड़ता था। पृथ्वीके अन्यान्य देशोंमें पुर्तगाली जलदस्यु बाधाहीन होकर डकैती करते थे और बन्दियोंको अपनी मरज़ीसे छोड़ते थे। किन्तु उन्हें सबसे पहिले बाधा मिली बंगालियोंसे।

और बंगाली समाज ? उस समयका सभ्य बंगाली-समाज और बंगालका राज-दरबार पुर्तगालियोंको इसी कारण बहुत छोटा समझता था। पृथ्वीके एक कोनेमें, हिन्दुस्तानके साम्राज्यके एक छोरपर होनेपर भी बंगाल 'इण्टर नेशनल ला' को मान कर चलता था।

केवल धान ही नहीं, धन भी 'सोनार बंगला' में भरा पड़ा था। औरंगज़ेब जब लगातार युद्ध करनेके कारण दिवालिया हो गया था तब उसके महल, हरम तथा सेनाका खर्चा चलानेका उपाय केवल बंगालका धन था। अठारहवीं शताब्दीके प्रथम चालीस वर्षोंतक दिल्लीकी मसनद केवल बंगालके धनपर ही क़ायम रही।

कासिमबाजारमें अंग्रेज़ रेजिडेण्ट स्ट्रेन्शम मास्टरने ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी ओरसे लिखा था कि शाइस्ता ख़ाँने पन्द्रह बरसों तक बंगालकी जैसी सूबेदारी की थी वैसी पृथ्वीमें और कोई नहीं कर सकता। उसके पास उस युगके मोटे तौरपर अड़तीस करोड़ रुपये थे और दैनिक आय थी—ऐसी वैसी रक़म नहीं—केवल दो लाख रुपये।

सेठजीको मुँह बाये देखकर मैंने कहा—"नहीं-नहीं, भयकी कोई बात नहीं है। शाइस्ता ख़ाँको हिसाब-किताब छिपानेकी कोई ज़रूरत नहीं थी। उस सुवर्ण युगमें इन्कम टैक्स नहीं लगता था। हाँ, सीधी-सादी भेंट जरूर भेजनी पड़ती थी।"

मुग़ल उमरावोंके बारेमें सम्पूर्ण विश्वास योग्य बातें मासिर-उल-उमरामें लिखी हैं। उसमें ऐसे धनरत्नकी बातें लिखी हैं कि पढ़कर सहसा विश्वास नहीं होता है।

बंगालके सूवेदार आज़मको लिखी औरंगज़ेबके पोतेकी चिट्ठीमें लिखा मिलता है कि कैसे बंगालमें वसूल की हुई रक़म औरंगज़ेबके पास गाड़ियोंमें भरकर चालान की गई। इतने रुपयोंकी हुण्डी कौन सेठ या बैंक देता? उस रेल-स्टीमर-हीन युगमें उसका चालान होता था, साधारण गाड़ियों द्वारा।

और, इसके बाद जब मुग़ल साम्राज्यके लिए खूब लड़ाई-झगड़ा और मार-काट शुरू हुई, तब प्रत्येक नये बादशाहका भरोसा केवल बंगालपर रहता था। जिसके हाथमें बंगालका धन होता था, वही क़िला जीतता था। फर्रुखसियर इसीके ज़ोरसे दिल्लीमें सम्राट् बना था।

हमारी ट्रेन मरुभूमिमें एक रफ़्तारसे चली जा रही थी। चारों ओर बालू—केवल बालू—धू-धू कर रही थी। यहाँ तक कि कहीं इधर-उधर कटीली झाड़ियाँ तक दिखाई नहीं देती थीं। केवल सुनहली बालू। मनमें सोचने लगा मानो बंगालकी मिट्टीका सोना बिछा हुआ है। इतना सोना कहाँ चला गया?

और इसका उत्तर मिला क्लाइवकी ज़बानसे पार्लिमेण्ट सिलेक्ट कमीटीमें। बंगालकी असम्भव लूटपाटके अभियुक्त लार्ड क्लाइवने अपनेको बचानेके लिए सफ़ाईमें कहा था—प्लासीकी विजयके बाद मैं किस अवस्थामें पड़ गया था, इसकी विवेचना करके देखिए। एक बहुत बड़ा राजा हमारी मर्ज़ीपर निर्भर था। हमारे पैरोंके नीचे एक महाधनी शहर था। मेरे सामने सिर्फ़ ज़मीनके भीतरका तहख़ाना खोल दिया गया था। उसमें दोनों ओर सोने और मणिमाणिक्यके स्तूप लगे हुए थे। मैं उसके बीचमें पैदल चला जा रहा था। मिस्टर चेयरमैन, इस समय मैं अपने संयमकी बात सोचकर आश्चर्यमें पड़ जाता हूँ।

ठीक तो है। जिस समय रुपयेके चार मन चावल मिलते थे उस समय क्लाइवने सिर्फ़ चालीस लाख रुपये हथिआये थे।

जेबसे सूती रूमाल निकालकर आँखें पोंछीं और उसे फिर जेबमें रख लिया। मुझे अंग्रेज़ व्यापारियोंका रूमालका कारवार याद आ गया। उन्होंने एक बार बालेश्वरसे बारह हज़ार रूमाल सिर्फ़ साढ़े तीन रुपयोंमें अपने देशको चालान किये थे।

किन्तु बंगालसे बाहर भेजा जानेवाला वह सब सामान जो इसे विदेशी धनसे पाट देता था, कहाँ चला गया? उसीके कारण उस युगमें बंगालसे बार्टर अर्थात् वस्तुके बदले वस्तु बेचने-ख़रीदनेका नियम उठ गया था।

कहाँ चले गये टामस बाउरीके हिसाबमें लिखे हुए वे सब चीनी, सूती वस्त्र, गोला, शहद, मोम, घी, तेल, दाल, रेशम और चावलके भरे हुए जहाज़?

आजकल बंगालमें फलोंकी दूकानपर जानेपर मेरी आँखें भौचक्की हो जाती हैं। जैसे दाम, उतना ही कम माल। और गाँवोंमें तो मौसमके फलोंके अलावा और फलोंके दर्शन ही नहीं होते। आजकल फल इतने मँहगे हो गये हैं कि उनका उल्लेख केवल कवितामें ही किया जा सकता है। किसी समय बंगालमें बहुत अधिक और बहुत उम्दा केला होता था। मगर आज उसकी जगह बाज़ारोंमें सिंगापुरका केला भरा पड़ा है। सम्राट् बाबरके समयसे ही बंगालका केला सबसे अधिक मीठा माना जाता था।

यहाँ साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्वकी एक घटना सुनाता हूँ। जहाँगीर और शाहजहाँके समयके इतिहासकी पुस्तक "बहारिस्तान-ए-घइबी"में लिखा है कि जब कभी मुग़लोंका युद्ध बंगाल, बिहार, उड़ीसा, आसामके अंचलमें होता था तब वे बंगालके गाँवों-गाँवोंमें घुसकर छा जाते थे। एक रात्रि शाहजहाँने किसी गाँवमें अपने अमीरोंके प्रति विशेष स्नेह दिखाया और उन्हें विशेष उपहार दिया। ज़रा चेष्टाकर सोचकर बताइए तो कि क्या दिया होगा। नहीं, आप बिलकुल अन्दाज़ नहीं कर सकेंगे।

आप लोगोंकी जीभ सिंगापुरी और वेस्टइण्डीज़के बे-मौसम पकाये हुए या अधपके केले खाकर उसीकी अभ्यस्त हो गई है। ज़रा सोचिए तो कि अत्यन्त शौक़ीन और शिल्परसिकोंके शिरोमणि शाहजहाँने अपने सभासदोंपर अत्यन्त अनुग्रह करके शाही दस्तरख़ानके मर्तमान केले दिये थे। उसके बाद उसने देखा कि उन केलोंको लेकर ऐसा गोलमाल हुआ कि उमराव शिताखाँके लिए बचाकर रखे हुए केले नहीं हैं। उनके लिए ख़ास तौरसे महलमें केले बचाकर रख दिये गये थे। तुरन्त खोजा लोगोंको हुक्म दिया गया कि केलोंकी खोज की जाय। किन्तु बहुत मुश्किलसे खोज-खाजकर वे बेचारे सिर्फ़ दो केले हाज़िर कर सके। आख़िर केले गये कहाँ? क्या बात है?

शाहज़ादा औरंगज़ेबने कच्चे सुवर्ण वर्णके और पकी सौरभसे भरे अमृतमय मर्तमान केलोंको छिपकर जो चखना शुरू किया तो सभी साफ़ कर गये। जब यह ख्याल आया कि यह क्या कर रहे हैं, तब सिर्फ़ दो केले बाक़ी बचे थे।

बंगाल देश केवल धन-धान्य और फल-फूलसे ही भरा हुआ नहीं था। यहाँकी स्त्रियाँ बड़ी सुन्दरी और मिष्ट स्वभावकी होती थीं। यद्यपि आजकल यूरोपीय स्त्रियोंको समस्त पृथ्वी सतृष्ण नेत्रोंसे ताकती है—उस युगमें अर्थात् जब श्वेत वर्णकी महिमा श्वेतराज्यके कल्याणसे इस तरह घर नहीं कर पाई थी, तब यूरोपके लोग भी इसी श्यामल देशकी श्यामा किशोरियोंको अपूर्व सुन्दरी मानते थे।

उस युगमें पुर्तगालियों, अंग्रेज़ों और डचोंमें एक क़िस्सा ख़ूब प्रचलित था कि बंगालमें आने-जानेके सौ रास्ते हैं, किन्तु वापस लौटनेका कोई रास्ता नहीं है।

यह क़िस्सा प्रचलित होनेका कारण यह था कि उन दिनों बंगालमें ख़ूब सुख और आरामपूर्वक रहा जा सकता था। किन्तु इस मरुभूमिमें आकर एक बार सम्राट् शेरशाहने भी यही कहा था कि मारवाड़में आकर

बाहर जानेका कोई रास्ता नहीं है। अवश्य ही इसका कारण कुछ और था।

इतिहासकी उस सत्य घटनाको इन मारवाड़ी सज्जनको सुनाते-सुनाते बाक़ी रास्ता काट देना कुछ बुरा न होगा।

'क्या करें, क्या न करें' मारवाड़के राजा मालदेवके सम्मुख यह समस्या मुँह बाये खड़ी थी। मुग़ल और पठानोंके लड़ाई-झगड़ेके कारण एक नई परिस्थिति आ खड़ी हुई थी। इतने दिनोंतक अत्यन्त विचक्षण राजनीतिककी तरह धीरे-धीरे वे मारवाड़को महान् बनानेका पथ तैयार कर रहे थे। सच बात तो यह है कि राजपूतोंके बीचमें इतना धुरन्धर पालिटीशियन विशेष रूपसे देखा नहीं गया।

इस प्रसंगमें पालिटीशियन शब्द व्यवहार किया गया है। कारण यह है कि इस घटनामें जितनी छल-चातुरी और छुरेके समान पैनी बुद्धि इंगित हुई है, उसका एक कण भी राजनीतिक शब्दमें नहीं आता है। दोनों शब्दोंमें भेद क्या है, इसे खोलकर बतलाता हूँ। यह समझ लीजिए कि चाणक्य थे राजनीतिक और कौटिल्य थे पालिटीशियन।

ऐसे मालदेवने अपनी आँखोंके आगे चित्तौड़को बहादुरशाहके हाथों छार होते देखा था। उन्होंने यह भी देखा कि कैसे हुमायूँने साँप भी मार दिया और लाठी भी न टूटने पाई। इस शिक्षाको मालदेवने अपने मनकी नोटबुकमें अच्छी तरह लिख लिया।

इस बार उस्ताद राजनीतिकी दलदलमें फँसे। अबकी चेलेसे पाला पड़ा। हुनरकी दौड़में वह कहाँतक पहुँच चुका है, इसकी परीक्षा होगी।

बंगाल और बिहारमें जब हुमायूँ और शेरशाहमें युद्ध चल रहा था, तब मालदेव अपना काम ठीक कर रहे थे। उन्होंने मेवाड़के पतनके बाद मारवाड़में राजपूतोंका सबसे बड़ा राज्य बनाया। उन्होंने चारों ओरसे राज्य जीतकर राठौर वंशका खूब विस्तार किया। राजपूतोंमें वंश-गौरव

बहुत बड़ी बात होती है। उन्होंने कम-से-कम पचास हज़ार राठौरोंकी सेना तैयार कर ली।

राजनीतिके खेलमें कल सन्ध्याका मित्र सवेरा होते-होते शत्रु हो जाता है। ठीक इसी तरह चौदह वर्ष पूर्व बाबर भी राणा सांगाका दुश्मन हो गया था। इतने दिनोंतक मुग़ल-पठानकी लड़ाईमें मौक़ा देखकर मालदेव अपना काम करते जा रहे थे। किन्तु वह लड़ाई अधिक दिनोंतक नहीं चली। हुमायूँ हारकर राजपूतानेमें आया। क्योंकि मालदेवने उसे दिल्लीके तख़्तपर बैठानेमें सहायता करनेका प्रस्ताव भेजा था।

किन्तु हमेशाके लिए अपनी पकड़ दे देना उस्तादी खेल नहीं होता है। शेरशाहसे युद्धमें हार जानेके बाद बेचारे हुमायूँका अब और अधिक नुक़सान क्या होगा। किन्तु अपना तो सभी कुछ चला जायेगा। इसीलिए आगा-पीछा सोच कर मालदेवने शेरशाहके साथ भी सन्धिकी बातचीत शुरू की।

इधर हुमायूँके मनमें भी सन्देहका अन्त नहीं था। मालदेव हुमायूँकी अभ्यर्थना करनेके लिए स्वयं हाज़िर क्यों नहीं हुए? क्यों इन्होंने केवल फल और अशरफ़ी भेजकर भेंटकी रस्म अदा की? क्यों ये सामन्तोंके साथ मेरे स्वागतार्थ लाल वस्त्र बिछाकर मुझसे मिलने नहीं आये?

इधर शेरशाहका दूत भी मारवाड़की राज्य-सभामें आकर हाज़िर हुआ। तबाकत-ए-अकबरीमें इस बातका प्रमाण मिलता है कि हुमायूँको बन्दी कर लेनेके लिए शेरशाहने मालदेवको बहुत-सी भेंटें देनेकी आशा भी दी थी और मालदेव इस कामके लिए बिलकुल बेराजी भी नहीं थे।

किन्तु देखा यह गया कि खरे राजपूत मालदेवने हुमायूँको अपनी मुट्ठीमें पाकर भी उन्हें शेरशाहको देनेकी कोई चेष्टा नहीं की।

इधर शेरशाह सेना लेकर मारवाड़में आ पहुँचा। या तो हुमायूँको अपने आश्रयसे दूर करो, नहीं तो पठानोंको वह काम करने दो। अर्थात् हमारे साथ लड़ो।

हुमायूँका दूत अन्तमें विना नोटिसके मालदेवकी राजधानीसे खिसक गया। और मालदेवने भी ऐसा लगा कि मुग़लोंको पकड़नेके लिए घुड़-सवार सेना भेज दी। सेना कम नहीं थी। पन्द्रह सौ घुड़सवार थे।

किन्तु हुमायूँके साथ केवल एक सौ सिपाहियोंकी सेना थी। उनमें-से जो कुछ लोग थोड़ा आगे थे उन्होंने निशाना साधकर तीर छोड़े। दो राजपूत घुड़सवार घोड़ेसे नीचे मरुभूमिकी बालूपर गिर पड़े। बाक़ी सब लोग मनमें हार मानकर भाग गये।

शेरशाहकी जान किसी तरह बची। उस समय दिल्लीकी ऐसी अवस्था न थी कि मारवाड़के साथ युद्ध करे। उसका तख्त डगमगा रहा था और मालदेव भी यह सोचकर खुश हुए कि उनकी कूटनीतिकी चालसे शेरशाह वापस लौट गया।

सयाने-सयाने ही में काट चलती है—मारवाड़ी सज्जन प्रसन्न होकर बोले—नहीं, नहीं, किन्तु इतना खुश होनेकी बात अन्तमें नहीं हो सकी, सेठजी! सुननेमें कष्ट होता है, किन्तु क्या किया जाय, हम लोग चिरकाल-से राजनीतिमें निरे बालक ही रहे—प्रतिकार करते हुए मैंने कहा।

जो भी हो, अदरकके व्यापारीको जहाज़की खबरसे क्या काम? शेरशाहने भी मालदेवकी कैसी काट की यह बात भी सुन लीजिए।

झगड़ेका कोई नया कारण नहीं था। किन्तु दिल्लीसे केवल पचास मीलकी दूरीपर राठौर माल्देवका राज्य था। यह कैसे सहन किया जा सकता था? इससे डेढ़ वर्षके भीतर ही उसने सेना तैयार की। मारो तो गैंडा और लूटो तो भण्डार; इस मंत्रको जपते-जपते शेरशाह मारवाड़की ओर चला। साथमें पर्याप्त सेना थी मगर वापस लौटनेका क्या ठिकाना। राठौर सबसे बढ़कर प्रतापशाली वीर थे। उनमें केवल गैंडेकी तरह प्रहार सहनेकी क्षमता ही नहीं थी किन्तु बाघकी तरह लड़नेका शौर्य्य भी था।

मालदेवने अफ़गान सेनाको ऐसी बुरी जगह फाँसा कि शेरशाह घबड़ा गया। उसके पास लड़नेका पर्याप्त सामान था, तोपें, हाथी, बन्दूक़, रक्षाके

लिए खाई खन्दक और बालूके थैले। मगर राठौर घुड़सवारोंकी क्षमताके सम्मुख उसकी कुछ भी न चली। मालदेवकी सेना केवल पचास हज़ार थी और शेरशाहकी अस्सी हज़ार। किन्तु ऐतिहासिक बदायूँनीकी भाषामें—शेरशाह 'मूर्ख और सूअरके समान स्वभावके खच्चर हिन्दुओंके विरुद्ध अपनी सेनाको इस तरह विपत्तिमें फेंकनेके लिए राजी नहीं हुआ।'

पीछे भागनेका भी कोई मार्ग नहीं था। यह तो बड़ी विपत्ति हुई। अच्छा कुछ ऐसा कौशल करना चाहिए कि मालदेव अपनी छायाको भी भूत समझकर भाग जाय। 'बलं बलं' केवल 'बाहु बलं' ही नहीं है 'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य' यही तो शास्त्रोंका मत है।

उसने एक अत्यन्त जाली चिट्ठी लिखी। मानो मालदेवके सरदारोंने शेरशाहको लिखी हो। इस चिट्ठीको उसने मालदेवके वकीलके तम्बूके सामने डलवा दिया। वकीलने भूमिसे उठाकर उसे पढ़ा और तुरन्त ही मालदेवके पास ले गया। शेरशाहका मतलब पूरा हो गया।

यह तो महा सर्वनाशकी बात हुई। इतने अधिक सरदार यदि विश्वास-घात करके अफ़गानोंसे मिल जायेंगे तो मालदेवका क्या होगा। भागो, भागो, तम्बू उखाड़ो और भागो।

सरदारोंने इस मिथ्या सन्देहको दूर करनेकी चेष्टा की। उन्होंने अपने सम्मानकी क़सम खाई। भगवान्की क़सम खाई। किन्तु हाय! टूटा काँच और टूटा हृदय फिरसे नहीं जुड़ता। मालदेव रातो-रात जोधपुर भाग गये।

किन्तु जय चन्देला और कुम्भ नामके दो सरदार नहीं भागे। उन्होंने अपना रक्त देकर नाम रक्षा करनेकी प्रतिज्ञा की। उन्होंने केवल बारह हज़ार सेनाके साथ शेरशाहकी अस्सी हज़ार सेनाके ऊपर बाघकी तरह हमला किया। घोड़ेपर बैठकर शत्रु संहारमें सहूलियत न देखकर उन्होंने घोड़ेको छोड़ दिया और बर्छे व तलवार हाथमें लेकर शत्रु संहारमें जुट पड़े। शेरशाहने हुक्म दिया कि पठान राठौरोंसे सम्मुख युद्ध न करें। वैसा

करना आत्महत्या होगा। जो कोई सामने आकर तलवारसे युद्ध करेगा उसकी गरदन उड़ा दी जायगी—यह हुक्म उसने दिया।

सामने आई हाथी सवार पल्टन, तोपें, गोलन्दाज़ और पीछे रहे खुरासानी तीरन्दाज़। बारह हज़ार राठौरोंमें एक वीर भी वापस नहीं लौटा। ढेरके ढेर शत्रुओंकी मृत देहोंमें उनकी देहें भी लौटने लगीं। जैसे असंख्य पतझड़के पत्तोंमें फूलोंके ढेर पड़े हों।

अहमक़। निहायत अहमक़पन। दो सौ वर्षों बाद भी औरंगज़ेबने राजपूतोंको अहमक़ कहकर निन्दा की थी। उन्होंने तूरानी सिपाहियोंके बारेमें लिखा था कि वे लड़नेमें अन्य सभी जातियोंके उस्ताद हैं। छल-चतुराईसे दुश्मनोंपर तेज़ीसे हमला करनेमें वे बड़े उस्ताद होते हैं। फिर भी अकस्मात् लड़ाईके बीचमें वे खिसक जानेमें कोई द्विविधा या लज्जा बोध नहीं करते। प्राण लेने-देनेमें समान वीर होते हुए भी हिन्दुस्तानियोंके अहमक़पनसे वे कोसों मील दूर हैं। हिन्दुस्तानी सिर कटा देंगे किन्तु क़िला नहीं छोड़ेंगे। ऐसे अहमक़ होते हैं वे।

किन्तु शेरशाहने इस युद्धकी समाप्तिपर मृतदेहोंके जंगल और उनके ऊपर धू-धू करती मरुभूमिकी बालू देखकर सिर हिलाकर यह कहा—एक मुट्ठी बाजरेके लिए मैं हिन्दुस्तानकी बादशाही हार ही बैठा था।

उसी एक मुट्ठी बाजरेके देशकी ओर देखते-देखते मेरी आँखें जल-सी उठीं। मैंने सूती रूमालको जेबसे बाहर निकाला। रेशमी रूमाल नहीं—वे रूमाल तो तीन सौ वर्ष पूर्व बंगालमें साढ़े तीन रुपयेके बारह हजार मिलते थे, वे नहीं। यह सोचते-सोचते आँखें और भी जलने लगीं। और उनमेंसे एक बूँद आँसू ढरक पड़ा।

उन आसुओंके बीचसे एक छवि सामने आ खड़ी हुई। सत्य ही तो। क्या आसुओंने कोई छवि रच दी? ढाकाकी मस्लिन क्या सम्राट्नन्दिनी जेबुन्निसाके अंग-सौष्ठवको ढक सकी है? औरंगज़ेब ढाकाकी मस्लिनके वस्त्र पहने आदरणीय शाहज़ादीको उसकी बेआबरू पोशाकपर एक दिन बकने-

झकने लगा। उत्तरमें जेबुन्निसाने अपने सम्राट् पितासे कहा, अब्बाजान, मैंने इस मस्लिनको आठ तहें देकर पहना है।

नहीं, आँसू, इतिहासकी आत्मीयता, और भूगोलकी निकटता एक स्थानपर नहीं रख पाते। बंगाल और राजवाड़ेमें मोटी तौरपर पन्द्रह सौ मीलोंका अन्तर है। दो-तीन हज़ार वर्ष पहिलेकी बात है। इसी मरुभूमिकी वालूमें जहाँ ट्रेन चलती है वहाँ नदीकी धारामें नौकाएँ चलती थीं। यहाँके गाँव ख़ूब हरियाले और हरे वृक्षोंसे आच्छादित थे। घने वृक्षोंकी छाया थी। ठंडी हवासे भरे धानके खेत थे। मेघोंसे ढका आकाश था। चलचित्रकी सुन्दर छविके समान नदी अपने समस्त ऐश्वर्यके साथ सामने बहने लगी। सिलहटसे सोनार गाँव तक पन्द्रह दिनोंकी नौका-यात्रा होती थी। हरे-भरे खुशहाल गाँवों और फलोंसे लदे हुए बगीचोंके बीचसे धीरे-धीरे हमारी नौका चलती थी। यन्त्रके समान पतवार उठते और गिरते थे, छपा-छप शब्द निरन्तर कानोंमें गूँजता रहता था, फलोंसे लदे बगीचे, दाहिनें-बायें हँसते-खेलते गाँव धीरे-धीरे सरकते जाते थे।

नहीं। मैं कहाँसे कहाँ आ गया। उस 'सोनार बंगाल' को देखनेका सौभाग्य हमारा नहीं है। उसे तो देखा था छः सौ वर्ष पूर्व मिस्रके इब्न-वातूताने।

: २ :

महारानीका निमन्त्रण !

सुधी पाठक! मेरे साथ कितनी बड़ी बात हो गई इसे तो ज़रा सोचिए। न सबेरेकी चाय न शामकी काफ़ी और न कोई दरबारी रिसेप्शन। मिला भी तो सीधे लञ्चके लिए महारानीका प्राइवेट निमन्त्रण।

इतनी दूर मेघनाके उस पार पूर्व बंगालमें एक छप्परसे छायी छोटी-सी झोपड़ीसे मरुभूमिके मध्यस्थित एक महाराणाके संगमरमरके महल तक। ग़रीब होनेपर भी यदि भक्ति है तो भगवान्से मिलनेकी आशा रहती है। मामूली आदमी होनेपर भी दिमाग़के ज़ोरसे ही तो कोई न कोई हिटलर या राकफेलर बन जाता है। किन्तु मेघनाके उस पारसे महारानीके ख़ास दरबारमें ? नहीं। ऐसी ताज्जुबकी बातके एक आध नमूने स्वाधीन हिन्दुस्तानके राजभवनमें, या राष्ट्रपति-भवनमें तो शुरू हो गये हैं, किन्तु महारानीके शास्त्रमें अभी तक लिखे नहीं गये।

और फिर ये ऐसी वैसी महारानी भी नहीं हैं। ख़ास जोधपुरकी राठौर महारानी। उसमें भी सिर्फ़ महारानी नहीं। बल्कि उससे भी बढ़कर। राजमाता भी नहीं, बल्कि नाबालिग़ महाराजाकी दादी दीदाजी बाई, जिनके स्वामी और पुत्रने उन्हींका रुख देखकर राज्य किया। अब भी उनका अल्पवयस पौत्र राजपाट पा लेनेपर भी उन्हींकी बुद्धिके ज़ोरसे मारवाड़पर शासन कर सकेगा।

इसी बीच स्वाधीनताके कल्याणसे सब राजपाट लोप हो गये। तब भी रणबंके राठौर राजवंशकी बहुत-सी बातोंमें महारानीकी ही बात मानते हैं। यह बीसवीं शताब्दी ऐसी सीधी-सादी नहीं है। किसी-न-किसी रूपमें मेरिया-थेरेसा या चाँद सुल्तानाका नूतन संस्करण तो महारानीमें देखनेको मिलेगा ही। और वह भी इन्हीं अपनी सीधी-सादी आँखोंसे।

महारानीने आज सबेरे निमन्त्रण भेजा है। केवल उनके अपने बेटे-बेटियाँ और थोड़ेसे गिने-चुने राज्यके अतिथि महारानीके साथ रहेंगे। और मेरे अभीके मुलाक़ाती राजा साहब और उनके भाई ठाकुर साहब भी रहेंगे। राजासाहबका 'ठिकाना' अर्थात् जागीर मारवाड़की सीमापर है। मुग़ल, पठान, जयपुर तथा मराठोंसे बार-बार भिड़कर इसी राज्यने न जाने कितनी बार रक्त-टीका लगाया है। राठौरोंकी पहिली डयौढ़ी है कुचामन। वहाँके क़िलेमें स्थान-स्थानपर उनकी वंश-प्रशस्ति बिखरी पड़ी है।

रक्त देकर उन्होंने उसे लिखा है, प्राण होमकर उसे प्राप्त किया है। शत्रुओंसे छीन-छीनकर उन्होंने जमा कर रखी हैं उनकी पगड़ियाँ, पोशाकें, पताकाएँ और हर तरहके हथियार।

और इन सबके बराबर मैं अपना अस्त्र–कलम–ही हाज़िर कर सकता हूँ। इसीने मेरा थोड़ा बहुत परिचय राजस्थानसे कराया है। तभी बंगाली-की लेखनीपर राजपूतोंकी श्रद्धा है। अपनी चिट्ठीमें महारानीने इसे स्मरण किया है। उसे पढ़कर मेरा मस्तक ऊँचा हो गया। राजपूत अपना वीरत्व मूँछें ऐंठकर दिखाते हैं। मैंने आज मन ही मन स्वीकार किया कि इतने दिनों बाद मुझे मूँछोंका न होना खला।

किन्तु अपने साहित्यके प्रति उनके इस सम्मानको देखकर श्रद्धासे मेरा मस्तक झुक गया। मेरी मिट्टीकी माँ, जिसकी लेखनीसे सोना बरसता है।

इसी समय माली कमरेमें गुलाबके फूलोंका एक गुलदस्ता रख गया। हाँ, मरुभूमिमें गुलाब।

फूलोंमें नाक लगाकर खूब कसकर मैंने उनकी सुगन्ध अपने भीतर खींच ली। गुलाबकी मीठी गन्धने मनको और भी मस्त कर दिया। मरुदेशकी एक कथा याद हो आई। अरबके खलीफ़ा अल-मतवक्केलने कहा था—मैं सुलतानोंसे भी बड़ा हूँ, और गुलाब फूलोंकी रानी है। इसलिए हम दोनों एक दूसरेके सबसे बढ़कर साथी हैं।

आज मैं भी उस खलीफ़ा बादशाहसे किस बातमें कम हूँ? हाँ, मुझसे भी बढ़कर अरब देशका वह तन्तुक कहा जा सकता है। अल-मासूम खलीफ़ाके समय एक गन्तुक गुलाबके मौसममें अपना काम करना बन्द कर देता था। वह शीराज़ीसे अपना सवेरा शुरू करता था और गाता था—"अरे गुलाबका मौसम आ गया जब तक गुलाबमें पँखुड़ी और फूल हैं सिर्फ़ शीराज़ी पी और मौज कर" जब गुलाबका मौसम चला जाता था तब काम शुरू करनेके पहिले वह गाता था—

"ऐ, ख़ुदाताला, अगर मौसमे-गुलाव तक तूने ज़िन्दगी बख्श दी तो फिरसे शीराज़ी शुरू करूँगा। और अगर उसके पहिले तूने दुनियासे उठा लिया तो बेचारे गुलाव और शराबके लिए अपनी आँखोंमें दो बूँद आँसू बचाकर रख लूँगा।"

उस समयके खलीफ़ा भी कम खलीफ़ा नहीं होते थे। गुलाबके क़द्र-दानोंमें एक जाल बुननेवालेसे उनका मुक़ाबिला हुआ। वे झूमकर बोले—अच्छा, मैं भी जानता हूँ, कि क़द्रदानकी क़द्र कैसे की जाती है। यह कहकर वे अपनी दरियादिलीमें इतना ऊँचे उठे कि गुलाबके मौसममें उसे दस हज़ार दिरहमकी पेन्शन दे दी।

हाँ, तो क्या कह रहा था। महारानीका निमन्त्रण। वहाँ और भी कई महारानियाँ आयेंगी। कमरेमें गुलाबका गुलदस्ता महक रहा था।

अरबकी कथा-कहानीको मनसे दूर करना ही होगा। वह सब मेरी लेखनीसे प्रसूत न हो सकेगा। इसीसे अमीर खुसरोकी शरण ली—

खुसरो सरमस्त अन्दर सागिरेमआनी बुरेख्त
शीरा अज़ .मैख़ाने मस्ती कि दर शीराज़बूद

अक्सर देखनेमें यह आया है कि बहुतसे गुणीजनोंका सबेरा बियरसे शुरू होता है। यह अधम उसके रससे वंचित ही रहा। मरुभूमिके समान अपने मनमें सूखे गलेको कभी-कभी काव्यरससे तर कर लेता हूँ।

तब भी यदि मेरे पक्षमें कोई वकील होता तब हाफ़िज़की यह उक्ति पेश कर देता—

ज़ाहिद शराब-ए-कौसर औ हाफ़िज पियाला खास्त
ता दरमियानाह खास्ता किरदगार चीश्त।

प्रसन्न मनसे कविता गुनगुनाते-गुनगुनाते एक ऐसी जगह पहुँच गया

जहाँ वास्तविकता थी। ऐसा लगा मानो मेघनाके अथाह जलमें चलते-चलते नाव मारवाड़की बालूमें आकर अटक गई। सोचने लगा—

हृदय अमार मयूरेर मत, नाचेरे।

इस बारेमें तो कोई सन्देह नहीं है कि मन नाच रहा है, किन्तु वहाँ पहिली बार जाकर मिलूँगा किस तरह। सब कुछ ठीक तरहसे निबट जाय इसके लिए कोई साथ भी तो नहीं रहेगा।

लंच पार्टी। साथमें डिनर जोकट होती तब भी काम नहीं बनता। अभी तक चूड़ीदार पायजामा और शेरवानी धारण नहीं की है। पहिननेकी कोई खास सदिच्छा भी नहीं है। मन कह रहा है कि यह सब नहीं चलेगा। मनश्चक्षुके सामने राजा साहब और उनके भाई ठाकुर साहबकी मूर्तियाँ नाच गईं। वे तो निश्चय ही प्रिन्सकोट अर्थात् बन्द गलेका कोट या जोधपुरी पहनकर महारानीके सामने मस्तक झुकाकर कोर्निश करेंगे। सिरका रंगीन साफ़ा उन सबको और भी आबदार कर देगा। हमारे यहाँ इस प्रिन्सकोटको गुजराती कोट कहा जाता है। इस अधमके पास भी एक ऐसा ही कोट और पतलून बक्समें सबसे नीचे छिपा-छिपाया रखा है। किन्तु दुष्ट लोग उसीसे कहने लगे हैं कि इस पोशाकसे मेरा शिर तो गरम नहीं हो जायगा। शायद इसीसे बंगाली सिरपर कुछ पहनते नहीं हैं। मेरे मनमें एक तरहकी पोशाकमें दो तरहकी छवियाँ उठ खड़ी हुईं। बन्द गलेके कोटमें ऐसा लगूँगा।

तब?

चिट्ठीको और अच्छी तरहसे पढ़ा। पोशाकके मामलेमें उसमें किसी तरहका निर्देश नहीं था। फिर एक अंग्रेजी ठंडे लाउंज सूटपर ही क्यों न भरोसा किया जाय?

अकस्मात् चिट्ठी ही ने रास्ता दिखाया। निमन्त्रणमें जब बंगाली साहित्यकारकी बात लिखी हुई है, तब महारानी असली बंगाली पोशाककी ही

प्रत्याशा करेंगी। यहाँपर मैं नई दिल्लीका नौकरीपेशा आदमी नहीं हूँ। मैं हूँ बंगालका एक साहित्यिक, रविबाबूके देशका व्यक्ति।

गुरुदेव, तुमने बंगालके बाहर पृथिवीमें हम लोगोंको कितना बड़ा बना दिया है, यह मैं अभी तक ठीक तरहसे समझ नहीं पाया हूँ।

उसके बाद चिन्ता हुई—पर्देको लेकर। क्या महारानी पर्दानशीन हैं ? या सामने आयेंगी ? क्या सहज भावसे बातचीत कर सकूँगा ? क्या थालीमें पूरियाँ अपने हाथोंसे परोसेंगी ? और इधर मैं परम प्रसन्नतापूर्वक बीसों अँगुलियोंसे ओरियण्टल डान्सकी शंख-मुद्रामें 'बस अब नहीं, बस अब नहीं'के आव-भाव दिखाऊँगा। और उधर दूसरे अतिथि अपने बीचमें एक साहित्यिक सुलभ पोज़को देखकर पुलकित हो उठेंगे।

पर्देकी भी बहुत-सी मात्राएँ होती हैं। जैसे उदयपुरकी महारानीका पर्दा था। वहाँ पुरुषोंके प्रवेशका एक दम ही निषेध था। यहाँ तक यदि महारानीके सगे भाई और बहिन भी उनसे मिलना चाहें तो महाराणाकी आज्ञा लेनी पड़ती थी। और महारानीके भाईके अतिरिक्त अन्य कोई पुरुष उनसे भेंट नहीं कर सकता था। अतएव महारानीके साथ मेरे देखे जानेकी तो बात भी नहीं उठती थी। केवल श्रीमती मिलने गईं। किन्तु महारानीकी बुद्धि और व्यक्तित्वसे आश्चर्य-विभोर होकर लौटीं। वे वास्तवमें महाराणाकी सहधर्मिणी थीं। अवसर आनेपर राज्यपाटको अकेले ही चला सकती थीं। जो कुछ हो रहा है क्यों हो रहा है ? और यदि ऐसा न हुआ तो क्या होगा ? उन्हें सूक्ष्म-से-सूक्ष्म बातोंकी जानकारी थी। उनके नेत्रोंमें जो दीप्ति थी वह केवल हीरे और जवाहरातोंके कारण नहीं, किन्तु विचक्षण विचार बुद्धिके कारण थी। तब भी वे पर्दा करती थीं।

इधर जिस सन्ध्याको श्रीमतीने उनके साथ साक्षात् किया था उसी रातको उन्होंने गोलीके पहिले ही निशानेसे एक बाघका शिकार किया था। ऐसी नारीके नेत्रोंको क्या सामान्य पर्दा ढककर रख सकता है ?

मनमें मुग़ल सम्राज्ञी नूरजहाँकी कहानी याद हो आई। एक बार जहाँगीरने क़सम खाई कि वे अब और शिकार नहीं करेंगे। उन्हीं दिनों एक बाघके उत्पातसे सब लोग घबड़ा उठे। राज्यके सबसे बढ़कर बहादुर अमीर-उमराव तक बाघको मार न सके। तब सम्राज्ञीने एक दिन अँधेरी रातमें एक गोलीसे बाघको ख़त्म कर दिया।

और हाफ़-पर्दा भी है। किसी स्टेटके राजमाताकी कहानी है। नातिनके जन्म-उत्सवपर ख़ूब धूमधाम, चहल-पहल थी, और हाफ़-पर्देके कल्याणसे उनके लिए वहाँ सब कुछ हाज़िर कर दिया गया था। वहाँकी प्रथा क्या थी, यह तो मुझे नहीं मालूम। तब भी एक और उत्सवमें अपनी आँखोंसे उसका नमूना देखनेको मिल गया। प्रासादमें एक बहुत बड़ी बैठक जमी थी और बड़ा मधुर संगीत बज रहा था। राजमाताकी उसे थोड़ा निकटसे सुननेकी इच्छा हो आई। संगीतके निकट एक पर्दा लगाया गया। और उसके पीछे वे चादरसे सर ढककर बैठ गईं। किन्तु बड़ा मधुर संगीत बज रहा था। थोड़ा और नज़दीकसे सुने बग़ैर काम नहीं चलनेका। उन्होंने स्वयं ताक-झाँक करके देखा कि एक और पर्दा बजानेवालोंके लिए पड़ा हुआ है। इन दोनों पर्दोंके बीचमें दो कुर्सियोंकी आड़ कर दी गई थी। पाँच-छः आदमियोंके सामने वह तेज़ीसे निकलकर दूसरे पर्देके पीछे चली गई। इस दौड़ा-दौड़ीके बाद क़ालीनपर बैठते-बैठते उनको क्षुधा लग आई। झलमलाते चाँदीके थालकी मिठाइयाँ समाप्त हो जानेपर, घूँघटके अन्दरसे थालीमें राजमाताकी तृप्तिमयी छाया कैसी फूट पड़ी होगी, इस समाचारसे हम अनवगत ही रह गये।

हुक्केकी नलीको तिरछा कर तम्बाकूका लुत्फ़ उठाना कैसा लगता है, यह आप निश्चय ही समझ गये होंगे।

आहा! मूलसे सूद प्रिय होता है। और पर्देसे हाफ़-पर्दा। कैसा उजियाले और अन्धकारका भाव है। सुना जा सकता है किन्तु देखा नहीं जा

सकता। देखा भी जाय तो छुआ नहीं जा सकता। जाते-जाते भी बिलकुल नहीं जाता। संसारका सबसे सवाया रोमान्स।

यदि विश्वास न हो तो मेरे साथ शाहजहाँकी दिल्ली चलो। शाहज़ादी साहिबा अर्थात् जहाँनारा अपने प्रासादसे दरबारके लिए रवाना हुईं। सिपाही, सवार, खोजा तथा भीड़भाड़का कोई अन्त नहीं। खोजा लोग शाहज़ादी साहिबाके सबसे पास रहनेके लिए ही जन्म लेते थे। ये होते थे हाफ़ पुरुष। सामने, दाहिने, बायें सबको धक्का देते हुए चीखते-पुकारते चलते थे। मौक़ा पड़नेपर पीट भी देते थे। उनके सामने किसीकी न चलती थी। पीछे छोटी बेगमोंकी पीनसें परदेमें चलती थीं। आगे-आगे गुलाबजलका छिड़काव होता चलता था, जिससे धूल उड़कर तांजामतक न पहुँच सके। तांजामपर बारीक़ सुनहली झालर पड़ी रहती थी। उसपर अत्यन्त सुन्दर सोनेका काम किया होता था और बहुमूल्य रत्न जड़े रहते थे। सोनेसे मढ़े हुए मयूरपंखे डुलाये जाते थे। हाथी झूमता हुआ दुलकी चाल चलता था। किन्तु तातारी बाँदियोंके हाथोंके मयूरपंख और भी विलम्बित तालसे झूलते थे। दीन-दुनियाके मालिककी शाहज़ादीको धुनी रुई सदृश मेघोंके बीचसे कभी-कभी झाँकते चाँदकी तरह सभी एक बार देखना चाहते थे।

मध्य युगके मुग़ल अमीर-उमरा अपने घोड़ोंसे उतर पड़ते थे। दो पग-की दूरीसे वे अपने दोनों हाथोंको सीनेसे लगाकर उस समय तक खड़े रहते थे, जबतक शाहज़ादीकी सवारी निकल नहीं जाती थी। उसके बाद भूमि-को प्रायः छूते हुए वे एक लम्बी कोर्निश करते थे।

राजकन्या क्या कुछ भी नहीं देखती थी ? नहीं। वह सब कुछ देखती थी और अपनेको भी देखती थी। यदि उसकी किसीपर मेहरबानी हो गई तो उसे रत्नजटित सुवर्ण ब्रोकेडका बटुआ भेज देती थी। उसमें पान, तम्बाक़ू इत्यादि होता था।

रोशनआराके भी कम ठाठ नहीं थे। उसने ठाठ-बाटमें अपनी बड़ी बहिनको बहुत पीछे छोड़ दिया था। उसके विराट् हाथीके ऊपर एक तांजाम रखा जाता था जिसका नाम था पीताम्बर। उसमें सोनेसे मढ़ा हुआ आसन होता था और उसका चँदोवा ठीक वैसा ही होता था जैसा सिंहासनके ऊपर सजाया होता था। उसके पार्श्वमें डेढ़ सौ हथियारबन्द रसिका तातारिनी चलती थीं। पीछे कितनी पालकियाँ चलती थीं, इसका कोई हिसाब नहीं। किन्तु समस्त पालकियाँ बारीक़ जरीकी झालरसे ढकी रहती थीं। वे हवामें लहराती चलती थीं और उनके भीतर आरोहिणियोंके हृदय धड़का करते थे।

यह जो लोग परदेकी आड़में हैं उसमें उन्हें क्या मिला और क्या नहीं मिला, इसका हिसाब-क़िताब कौन अहमक़ या बे-रसिक करना चाहेगा। कविने ठीक ही गाया है—

नयने नयने यदि, हृदये हृदये, बालूर बाँध राधे कि हे, असीमसलिले ?

पर्दे और हाफ़-पर्देके बीचमें जो बारीक़-सी आड़ है उसे लेकर मन-ही-मन कुछ सोच रहा था। जोधपुरके ढाई पहाड़ी क़िलेके ऊपर देखा हुआ रानीपाड़ा याद आगया। रानीपाड़ा नाम सुनते ही मैं वास्तवमें चौंक पड़ा। अपने देशमें बाह्मनपाड़ा, धोबीपाड़ा इत्यादि नाम सुने थे। किन्तु रानीपाड़ा।

हाँ, ठीक ही तो है। एक महाराजा हुए तो उनकी रानियाँ हुईं सत्ताईस, उपरानियाँ हुईं सत्तावन, रखैल, हाफ़रानी, नेकनजरानी हुईं तीनसौ तिरसठ। एक दिन इन सबको छोड़कर, राजपाटकी माया काट वे चलते बने। इसके बाद जो भी गद्दीपर बैठाया गया या दख़ल करके बैठ गया वह इतने लोगोंका भारी खर्चा कहाँसे उठा सकता था। और इन सबको राजमहलमें या कहीं-न-कहीं जगह तो देनी ही पड़ेगी। क्योंकि नई महारानी, हाफ़रानी इत्यादिका दावा सर्वोपरि है। चन्द्रमा अस्त हो

जानेपर जहाँ रोहिणी भरणीका स्थान हो जाता है उसीका नाम होता है रानीपाड़ा ।

आजकल श्रेणीहीन समाज अर्थात् क्लासलेस सोसायटीका निर्माण करनेके लिए बहुत-से लोग हाथ धोकर पीछे पड़े हैं। ये इस बातको अच्छी तरह समझते हैं कि यद्यपि यह टिमटिमाता दिया बुझनेको है किन्तु फिर भी श्रेणीविभागका अविचार बहुत दूर तक भीतर पहुँच चुका है ।

एक स्टेटमें देखनेमें यह आया कि वहाँकी बाई साहिबाका विगत महाराजके साथ किस तरहका विवाह सम्बन्ध हुआ था इसे कोई भी नहीं जानता था । कुछ मित्रोंने धीरेसे फुसफुसाकर केवल इतना ही बताया कि रजवाड़ेमें हिन्दू विवाहके कई भेद हैं । ठीक होमियोपैथिक दवाके डाइल्यूशनके समान ।

कुछ समय बाद महाराजाके प्राइवेट सेक्रेटरीने अकेलेमें इस बातको और खुलासा करके समझाया । सिर्फ़ रानियों ही में नहीं, बाँदियोंमें भी भेद होते हैं । सोनारानी, रूपारानी और हीरारानीके समान सोनाबाई, रूपाबाई, हीराबाई और न जाने कितने ।

इस श्रेणीविभागसे भरे वातावरणमें दीदाजी बाई अपने स्वामीके राजपाटकी एकछत्र अधीश्वरी थीं । आकाशमें किसी भी अश्विनी भरणी कृतिका रोहिणीका आना-जाना नहीं हो सकता था । किसी तरह भी चन्द्र-ग्रहणकी सम्भावना न थी । वे महाराजा उम्मेदसिंहके सुख-दुःखकी सम-भागिनी थीं । संगिनी उत्सवे व्यसने चैव ।

एकबार वर्षाकालमें एक पहाड़ी मरुनदीमें गर्जन-तर्जन करता हुआ जल भर गया; बड़े साधसे निर्माण किये हुए छविके समान जोधपुर शहरके ध्वंस हो जानेकी नौबत आगई । अँधेरी रातमें बाँध बनवानेकी चेष्टामें महाराज स्वयं महलसे बाहर आये । काममें उत्साह देनेके लिए उनके पार्श्वमें दीदाजी बाई थीं । तब वे महारानी थीं । न घूंघटके आवरणका झंझट न पर्देके आबरूकी चिन्ता । वास्तवमें राजपूतनी राजसी थीं ।

मैंने महारानीके अतीत जीवनकी घटनाओंमें उत्साह दिखाया तो देखा कि दीदाजी बाईके नेत्र आँसुओंसे छलछला उठे। वे सुनाती गईं, एकके बाद दूसरी अतीत जीवनकी कहानी। वे स्वामी आज नहीं रहे, वह राजपाट भी नहीं रहा, सिर्फ़ एक कहानी भर रह गई है। अतीतके इस मन्थनमें कहीं कोई व्यथा न थी, कोई अभियोग न था। तब वास्तवमें वे अपने राज्यका शासन करती थीं। तबसे कितना चला गया है और कितना कुछ रह गया है इसे सोचकर मैंने मन ही मन इस वीर नारीको नमस्कार किया।

सामने चुस्त राजपूती साफ़ा डाटे हुए बटलर खड़ा था। उसके हाथ-में तरबूजका रस था। महाराजकुमार अर्थात् डेढ़ वर्ष पूर्व जो युवक महाराजा ऐरोप्लेन दुर्घटनामें मर गये थे, उनके छोटे भाईने तरबूजका रस पीनेका अनुरोध किया। वे जोधपुरी ब्रिचेज़ पहने थे, उनकी कमरमें एक राजपूती छुरा और बड़ी-सी पिस्तौल थी। पिस्तौल और छुरा दोनों महाराजके निजी अस्त्रालयमें तैयार किये गये थे किन्तु मैंने छुरेकी ओर उसे देखनेके लिए ही दृष्टि नहीं फेरी थी। तरबूजका रस, छुरा और सोफ़े-पर विराजमान राठौरकी महारानी। मेरे सामनेसे वर्षोंके बाद वर्षोंके पर्दे हटते गये।

शाहजहाँके राजत्वका अन्तिम समय था। चारों पुत्रोंमें तुमुल युद्ध चल रहा था। युवराज दाराकी ओरसे जोधपुरके महाराज जसवन्तसिंह लड़े थे। नर्मदा तटपर हारकर वे जोधपुर वापस लौटे। किन्तु महारानी महामायाने क़िलेके फाटक बन्द करा दिये। उनकी दृष्टिमें उनके स्वामी वीरगति प्राप्त कर चुके थे। राजपूतनीका स्वामी रणक्षेत्रमें ढाल लेकर वापस लौटे। वह ढाल लेकर नहीं आता है, उसकी मृतदेह ढालपर आती है। राजपूतनी होकर महामाया उस अवस्थामें और करती भी क्या!

इस सम्बन्धमें चारणकी कविता है:—

खग तो अरियाँ खोसली, पिउधर आया भाज।
जिन खूँटी खग ठाँवता, उनपर ठमको लाज।

शत्रुने तुम्हारी तलवार छीन ली, और हारकर प्रियके घर भाग आया। जिस खूँटीपर तलवार टाँगकर रखते थे, वहाँ अब अपनी लज्जा टाँगकर रख दी।

वीर नारीने क्षमा नहीं किया।

पिउ कायर होता महल, हौं होती सिरदार।
हौं मरती थे नम्ह बलत, दुख तो लायो लार।

यदि मेरा कापुरुष स्वामी स्त्री होता, और मैं सरदार होती तो निश्चय ही युद्धक्षेत्रमें प्राण दे देती। मेरी मृत्युके बाद वह सती न भी होता तो इससे बढ़कर और दुःख क्या होता ?

स्वामी वीरगतिको प्राप्त हुआ है इसलिए महामायाने चिता सजानेकी आज्ञा दी। जसवन्तसिंहने फिरसे वीरोंके समान युद्ध करनेकी प्रतिज्ञा की और रणभूमिके लिए प्रस्थान किया। किन्तु हाय, भग्न काँच और भग्न हृदय फ़िरसे नहीं जुड़ते।

एक दिन महाराज भोजन करनेके लिए बैठे थे। निकट स्वयं महारानी पंखा झल रही थी। दासीने तरबूजका एक टुकड़ा और उसे काटनेके लिए एक छुरी लाकर रख दी। महारानीने छुरीकी तेज़ धारके समान चोट की। छुरी जल्दीसे सामनेसे हटा दो; महाराज छुरी-छुरा देखते ही मूच्छित हो जाते हैं।

मैं डाइनिंगरूममें जाकर बैठ गया। यह नीचे तल्लेके बैन्क्येटरूमके समान बड़ा नहीं था। यहाँ सजावट और अदब क़ायदेकी भीड़में दिशा-हारा हो जानेका डर नहीं था फिर भी यह इतने सुन्दर और महँगे सामान-से सजा हुआ था और नाना प्रकारके भोज्य पदार्थोंका इतना अम्बार कि

साधारण बंगाली यहाँ खा-पीकर उसे हज़म भी कर सकेगा या नहीं यह कौन कह सकता है। किन्तु महारानी टेबिलकी हेडपर अर्थात् सबके ऊपर बैठी थीं और मैं ठीक उनके दाहिने हाथपर बैठा था। उन्होंने बड़े सरल और स्वाभाविक ढंगसे मुझे अपना लिया था, और मैं उनका अपना व्यक्ति हो गया था।

उन्होंने मुझसे भोज्यपदार्थोंके खानेका बार-बार अनुरोध किया। कई दिनोंसे मैं राजपूती भोजन कर रहा था। कुचामनके पीले पत्थरोंके दो-मंज़िले महलमें मैं बड़े आदर और अपनेपनसे रखा गया था। जिस गोल कमरेमें मैं ठहराया गया था वह उनके निकट ही था। कमीज पहनकर महलकी दूसरी ओर घूमते-घूमते मैं अक्सर चला जाता था, और राजपूत-महिलाओंसे साक्षात् हो जाता था। किन्तु यदि सूर्यको उनके मुख देखनेका अवसर न मिले तो यह दीन जन उसकी चेष्टा कैसे कर सकता था?

मध्ययुगकी चक्करदार सीढ़ियोंसे उतरते-उतरते जब भोजन करनेके लिए मैं नीचे पहुँचा तो मुझे ऐसा लगा कि वहाँ मेज-कुर्सियाँ कुछ जच नहीं रही हैं, वहाँ तो केवल राठौरी पगड़ी पहने हुए खानसामाओं द्वारा राजपूती खाना ही अच्छा लगता है। उन्होंने मुझे बड़े यत्नसे घी और मसाले लगाकर जाफ़रानी माँस खूब खिलाया था। बंगाली पेट त्राहि-त्राहि कर रहा था। किन्तु बंगाली सीनेको ठोंककर कहता था—कभी नहीं। हार मान लेना—कभी नहीं। इस गरिष्ट राजपूती भोजनको खूब डटकर खाये जाओ। किसी-न-किसी तरह हज़म हो ही जायगा। वीरोंके देशमें आकर अगर और कुछ नहीं कर सकता तो भोजनके मामलेमें तो वीर बनना ही होगा।

बिना खाये उपाय भी क्या था? लखनऊके मित्र अहमद अली आज कराचीमें हैं। पाकिस्तान सरकारके कोई खास व्यक्ति। बहुत रजीद होकर धीरेसे उन्होंने मुझसे अपनी एक व्यक्तिगत घटना बताई। ऐसी मर्मस्पर्शी घटना कहीं भुलाई भी जा सकती है। मेरे ये मित्र फ़्रण्टियरमें अपने

एक शिनवारी मित्रके यहाँ, जो इनका कालेजमें सहपाठी था, अतिथि होकर गये ।

किन्तु जिस दिन ये उस पाण्डव वर्जित देशमें पहुँचे उसी दिन सवेरे उनके पठानी मित्रको दूर किसी गाँवमें कार्यवश जाना था । घरमें अपनी बेगमसे वे कहते गये कि मेरे दोस्तको ख़ूब अच्छी तरहसे खिलाना-पिलाना । पर्देकी आड़में श्रीमतीने ख़ूब तगड़े, दुम्बेसे शुरू करके पहाड़के समान खाने-पीनेका अम्बार लगाना शुरू कर दिया । उसे उदरसात् करनेकी हिम्मत एक तो क्या सात अहमद अली भी नहीं कर सकते थे । पर्देकी आड़से बेगमसाहिबाने बहुत कुछ कहा-सुना और अन्तमें अफ़सोस भी ज़ाहिर किया कि शायद यहाँका पठानी भोजन लखनऊके नवाब साहब-की मर्ज़ी माफ़िक नहीं है। एक तो वे सर्वदेवमय अतिथि, उसपरसे मालिक-के दोस्त, आख़िर वे खाते क्यों नहीं हैं; कुछ तो मेहरबानी करनी ही चाहिए । पर्देके उस पारसे बेचारी बेगमसाहिबा सूझ-बूझ खो बैठीं ।

अन्तमें मामलेको सुलझता हुआ न देखकर बेगमसाहिबा अतिथिके सामने पर्दा हटाकर चली आईं । और उन्होंने अतिथिका सत्कार ठीक अपनी नज़रोंके सामने शुरू किया । और अहमदअली प्राणभयसे चुरा-छिपाकर काबुली हज़म गोली खाने लगे ।

इस बीचमें पठान मित्र वापस आये तो सारा व्यापार देखकर महा-क्रोधित हो उठे । इतना बड़ा ग़ज़ब, ताज्जुब और शर्मकी बात । दो दिनोंमें ही बेगम बेहया और बेआबरू हो गई । पठानोंके शास्त्रमें इसके लिए सिर्फ़ जहन्नुममें जगह है ।

घरके अन्दरसे स्वामी-स्त्रीकी तक़रार स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी । दुःख और शर्मके मारे अहमदअलीका मरनेसे भी बदतर हाल हो गया । मगर बेचारे करते भी तो क्या ।

मित्रपत्नी चीख़-चीख़कर महल्ले भरके कान फाड़े डाल रही थी । अरे यह झींगुर ऐसा तुम्हारा हिन्दोस्तानी दोस्त ! यह मर्द किधरसे है । एक

बटेर तक तो खा नहीं सकता। ऐसे आदमीके सामने चले जानेपर भी क्या कोई औरत बेपर्दा हो सकती है।

अहमदअली दाढ़ी-मूँछें सफ़ाचट रखते थे। कमरपर हाथ फेरते-फेरते वे बोले, "हज़ार शुक्र अल्लाहका, कि मैं कानसे ज़रा ऊँचा सुनता हूँ।"

कुचामनमें मित्रोंके साथ रोज़ बैठकर भोजन करनेमें मुझे अहमदअली-की कहानी याद हो आई। प्राण छटपटा रहे थे। एक दिन विलायती पतला शोरवा और लड़ाईके समयसे चालू तीन कोर्सका डिनर खानेपर कहीं थोड़ा-बहुत पेटको आराम मिला।

इन्हीं दिनों एक दिन मास्टर साहव हाज़िर हुए। राजपूत स्कूलके हेडमास्टर थे। शरीरसे बूढ़े, किन्तु मनसे जवान। उस स्कूलमें क़िताबी विद्याके साथ-साथ कैसे अच्छा सैनिक और सामरिक अफ़सर बना जाता है यह भी सिखाया जाता था। केवल पढ़ाई करने ही से जान लेने और देनेका कारवार ठीक तरहसे नहीं आ सकता।

मुझे एक टुकड़े मांस और पिस्तेके पुलावसे युद्ध करते देखकर मास्टर साहबको बड़ा ताज्जुब हुआ। बटलरको बुलाकर ज़रा रोब जमाया। सामरिक स्कूलकी सब विद्या क्या यूँही मिट्टीमें मिल जायगी? ये हज़रत ऐसा चकमा देते हैं कि राजासाहबके अतिथिको सिर्फ़ देशी खाना ही खिलाते हैं। क्यों? उनकी आज्ञा हुई कि आज पूले पोलोनेज़ (पोलिंग ढंगसे तैयार किया हुआ मुर्ग़) बना कर खिलाया जाय। इससे राजासाहब-को तो खुशी होगी ही उनके विदेशी अतिथिका भी ज़ायका बदल जायगा।

ये बटलर महाशय विलायती या कान्टीनेन्टल ढंगसे मुर्ग़ बना सकते हों यही बात नहीं थी। वे उनके फ़रासी नाम भी जानते थे। वे क्या उत्तर देते हैं यह ज़ाननेके लिए मैंने अपने कान खड़े कर लिये। हिमालयके समान ऊँची पगड़ीको थोड़ा अदबसे आगे झुकाकर उन्होंने बहुत धीरेसे फुस-फुसाते हुए उत्तर दिया—रानीसाहिबा अपने अतिथिके लिए स्वयं अपने

हाथोंसे भोजन बनाती हैं; रोज़ चार समय। सरकारके बटलरकी इतनी हिम्मत कहाँ कि सबके मेनूसे विदेशी अतिथिका असम्मान करे।

मैंने इसे ग़ौरसे सुना। दोनों ओर बटलरोंका दल थालियाँ और डिशें लेकर चुपचाप आते-जाते थे। किसीके पास देशी भोजन था तो किसीके पास विलायती। किन्तु विलायती भोजन मेज़के उस पार चला जाता था। कुचामनके तथा और स्थानोंके व्यक्ति उधर डटे हुए थे। किन्तु मैं महारानीके सन्निकट ही बैठा था। समस्त कमरेमें प्रकाश-सा भरते हुए जो लोग बैठे थे उन्होंने भी फरासी 'अरदोवर' (करौंदा, शलगम, सेम, मटरकी मिली हुई भाजी, काकटेल, सासेज़, सार्डिन, मछली, भुने अंडेके टुकड़े, अन्चोमि, हर एक तरहकी ड्रेसिंग और इन सब पाँच वस्तुओंको मिलाकर तैयार की हुई कान्टीनेन्टल भोजनकी अग्रदूत) से शुरू किया। किन्तु खास मारवाड़ी भोजनमें केवल दीदाजी बाई ही मगशूल रहीं। और उन्होंने अपने हाथों द्वारा बनाये उस मारवाड़ी भोजनको बार-बार मेरे आगे परोसा।

क्या किसी महाराजाको भोजन करनेमें कभी इतना सुख मिल सका है ?

क्यों सुधी पाठक, अवाक् रह गये न ?

अवाक् होनेकी बात भी है। इतनी मालदार खानेकी सभी चीज़ें थीं; तब भी खानेमें सुख नहीं था।

प्रत्येक वस्तु परोसनेके पहिले चखकर देख ली जाती थी। क्या जाने ज़हर मिला दिया गया हो। राजा-महाराजाओंको इस लोकसे हटा देनेके लिए भोजनमें विष मिला देनेकी प्रथा बहुत पुरानी है। एशियामें प्राचीन ग्रीस व रोममें और कौटिल्यशास्त्रमें राज्य हस्तगत करनेके लिए इसके प्रयोगका उल्लेख है। इसलिए सब देशोंमें इससे बचनेके लिए कई चाखनदार रखे जाते थे।

उदयपुरके राजराणा डिपार्टमेण्टमें दो खम्भोंसे बँधा हुआ एक लोहेकी जंज़ीर-सा यन्त्र झूला करता था। इसे जयपुरके सवाई राजा जयसिंहने ढाई-सौ वर्षों पूर्व महाराणाको उपहारमें दिया था। भोजनमें विष मिला है या नहीं इसे यह यन्त्र ज्योतिष विद्याके ज़ोरसे बता देता था। वह यन्त्र नाना प्रकारके मन्त्रोंसे सिद्ध था। अब वह यन्त्र उपयोगमें नहीं आता है किन्तु यन्त्रके रहते भी चाखनदारोंकी चाकरी तो कही जा न सकती थी।

दो विराट् भोजनके झावे एक बहँगीपर लटकाकर भंडारी चलता है। दोनों झावे बहुत क़ीमती सुन्दर कपड़ेसे ढँके रहते हैं और रस्सीसे बाँधकर सील-मोहर कर दिये जाते हैं। पीछे-पीछे चाखनदारोंका सरदार चलता है। वह महाराणाका अन्न चखनेके लिए खूब उत्सुक दिखाई देता था इसमें कोई सन्देह नहीं। कितना मस्त और बेफ़िकरीका जीवन। कितना विशाल तोंद निकला हुआ है, जैसे सागरकी उत्ताल तरंग।

किन्तु चाखनदारोंका काम इतना आरामदेह और निश्चिन्तताका नहीं है। सम्राट् बाबरके भोजनमें एक बार विष मिला दिया गया था। उसके शत्रु इब्राहीमकी माताकी कार्रवाई थी। बाबरने अपनी आत्मजीवनीमें लिखा है, 'चाखनदारोंके टुकड़े-टुकड़े काटकर फेंक देनेका और बावर्चीकी ज़िन्दा खाल खींच लेनेका हुक्म मैंने दिया। एक औरतको हाथीके पैरोंसे कुचल देनेका और एक आदमीको तोपसे उड़ा देनेका हुक्म मैंने दिया।'

किन्तु आज महाराजाओंका मुकुट छिन गया है और उसीके साथ-साथ हज़ार झमेलोंसे भरी दुश्चिन्ताएँ भी चली गई हैं। अंग्रेज़ीमें कहा भी है, 'अनइज़ी लाइज़ दि हेड दैट वियर्स दि क्राउन।'

बाटी अर्थात् घीसे सराबोर बाजरेकी चपाती और 'सेना' अर्थात् मांस और बाजरेकी खिचड़ीका कोर्मा समाप्त करते-करते किस कौशलसे कमर ढीली कर ली जाती थी, यह यहाँ समझमें आया। इसके बाद आई रस-

मलाई। कलकत्तेकी साइज़ नहीं थी। पूरे पर्वतकी तरह, दंगे-हंगामेमें काममें लाये जानेवाले गोलेकी तरह।

महारानीने अत्यन्त प्रसन्न मनसे कम-से-कम एक चखनेका आग्रह किया। कहने लगी कि यद्यपि इनका जन्म कलकत्तेमें हुआ है, किन्तु इनका डेवलपमेण्ट अर्थात् उन्नयन हुआ है मारवाड़में। अपने देशकी चीज़ आप पसन्द करेंगे, इसलिए इन्हें विशेष भावसे बनवाया गया है।

चारों ओर मधुर रसालय और गानेवालोंकी पोशाकोंका जलूस था। हीरा-माणिक देखूँ या रूपकी छवियाँ देखूँ। एक बार सबकी दृष्टि बचाकर ऊपर लटके प्रकाण्ड बेल्जियम कटके झाड़-फानूसकी ओर देखने लगा। आजकलके अपने चेहरेकी जगहपर उसमें अपने किशोर मुखकी छाया झलक उठी।

वह किशोर तब लन्दनमें था। सामान्य स्कालरशिपके भरोसे यूनीवर्सिटीमें पढ़ता था। एक साधारण बोर्डिंगहाउसमें रहता था। साथमें दो मित्र थे। एक सन्ध्याको कालेजसे लौटकर देखा कि एक चटगाँवका निवासी एक सुन्दर एंग्लो-इण्डियन युवतीके साथ इतमीनानसे बैठा है। उद्देश्य कुछ सहायता पानेका था। खास चटगाँवके लहज़ेमें अंग्रेज़ी-बंगाली मिश्रित बोलीमें बात करने लगा कि कैसे वह लस्कर बनकर इस देशमें विवाह कर संसार बसाने आया है। किसी तरह लस्टम-पस्टम माँ खृष्टीकी कृपासे काम ठीक ही चल जाय। अतएव····

उस व्यक्तिकी छोटी कसमसाती युवतीकी माया मित्रोंपर काम कर गई। इस बेचारीका क्या दोष। उसके सूखे मुरझाये सुन्दर मुखपर भारतीय अक्षमताकी स्पष्ट छाप उन्हें दीख पड़ी। वे स्वदेश-प्रेममें प्राण देनेको तैयार हो गये। उस व्यक्तिको तत्काल कुछ सहायता करनी ही चाहिए। उस समय राउण्ड टेबल कान्फ्रेन्समें भाग लेने बहुत-से स्वदेशी महारथी लन्दन आये थे। उनसे सहायता माँगनेके लिए हमने उन्हें एक आवेदन भी लिखकर दे दिया।

अगले सप्ताहमें फिर चटगाँव महाशय उसी युवतीको लेकर हाज़िर हुए। किसीने भी सहायता नहीं की। फिर तो वे चक्करपर चक्कर लगाने लगे। आख़िर मित्रोंने यह तय किया कि थोड़ी-सी भिक्षा दे देनेसे इनका कुछ भी भला न होगा। सोच-साचकर यह तय पाया गया कि इन्हें पैरोंपर खड़ा करनेके लिए एक ठेलागाड़ी ख़रीद दी जाय जिसपर ये फल वेचा करें। इसमें पूँजी भी कम लगेगी और यह व्यवसाय भी स्वाधीन होगा। किन्तु पूँजी कहाँसे आये ?

अन्तमें मित्रोंने महीनेका बचा हुआ अपना जेबख़र्च चटगाँव महाशयके हाथमें रख दिया। अपनी जेब अवश्य कुछ ख़ाली हो गई, किन्तु यह सोच कर सन्तोष किया कि अपने एक स्वदेशवासीको पैरोंपर खड़ा तो कर दिया। किसी तरह उसकी रूखी-सूखी रोटियाँ तो चल जायँगी।

इसके वाद मित्रोंका अनशन और अधपेटी तपस्या शुरू हुई। अगले महीनेमें देशसे ख़र्चका रुपया आयेगा। तबतक तो किसी तरह चलाना ही होगा। यहाँ उधारका कारवार नहीं चलता है और यदि यह किया भी तो फिर आदर्शके लिए स्वार्थ-त्याग क्या रहा ? संबल रहा केवल सूखे टोस्टपर थोड़ी सार्डिन मछली। इसीसे क्षुधापूर्ति की गई। किन्तु उस वयस्में भूख भी राक्षसी होती है। किसी तरह आदर्शका पल्ला पकड़कर दिन काटे गये।

एक घनी सन्ध्याको हम लोग कालेजसे लौट रहे थे। रास्तेमें देखा कि चटगाँव महाशय ओवरकोटमें सिर डुबकाये ताड़ीखानेसे झूमते-झामते निकल रहे हैं। कहाँ गई फलोंकी ठेलागाड़ी और कहाँ गया अपने पैरोंपर खड़े होना। मित्रोंके उपवास करके दान की हुई रक़म बोतलवाहिनीके पेटमें समा गई। सार्डिन टोस्ट खाकर दिनपर दिन वितानेवालोंका न कोई आदर्श रहा न रही किसी प्रकारकी सान्त्वना।

महारानी और रसमलाईके सामने बैठकर अपनी उसी किशोर छायासे अनुनय करने लगा—'भुला न देना, उस दिनकी बातको भुला न देना।'

: ३ :

असली राजपूत कौन है ? इसी विषयपर आलोचनामें प्रवासी राजपूतोंकी बातचीत हो रही थी। इस बातको लेकर प्रवासी बंगालियोंकी बात भी आ गई।

बंगाली जब बंगाल देशके बाहर जाते हैं तो अपनी शिक्षा-दीक्षा और संस्कृतिको भी अपने साथ ले जाते हैं। नूतन देशके मनुष्योंको मित्र बना लेते हैं। उनसे नई बातें सुनते हैं और नये-नये स्वप्न देखते हैं। इस देशमें सबसे पहिले बंगालको पश्चिमका प्रकाश पानेकी सुविधा हुई। उसे उन्होंने अपने घरोंमें छिपाकर अकेले भोग नहीं किया। उसका सुख अकेले नहीं उठाया। मनकी सम्पदापर एकाधिपत्य नहीं किया।

मेवाड़ी मित्रोंने प्रवासी बंगालियोंके सद्‌गुणोंकी बहुत-सी बातें बताईं।

उदयपुरके एक नामी बंगालीके घरमें विवाह था। मित्रोंने तय किया कि निमन्त्रित न होनेपर भी मुझे उस सन्ध्याको उन अपरिचित बंगालीके घरमें ले जाया जायगा। जान-पहचान नहीं है तो न सही। इसमें कोई बाधाकी बात नहीं। मैं भी राज़ी हो गया। प्रवासमें जैसे बहुतसे नियम नहीं चलते हैं उसी तरह इसमें भी एटीकेट टूट जानेकी कोई बात न थी।

राजस्थानमें जाकर बहुत-से बंगाली बड़े बन गये हैं। किन्तु उनमें भी उदयपुरके श्रद्धेय चटर्जी महाशयकी कथा बंगालके लोग बहुत अच्छी तरह नहीं जानते हैं। उन्होंने एक कहानी सुनाई। सिर्फ़ कहानी ही नहीं— 'फेबल' अर्थात् नीतिकथा। हमलोग धूपमें पिघल जानेके और शीतमें ठंडकके मारे ठिठुर जानेके भयसे बंगालके बाहर किसी तरह भी जानेको राज़ी नहीं होते हैं। चाहे जो हो बंगालकी नरम और मुलायम आब-हवासे

हमलोग चिपके ही रहना चाहते हैं। घरके बाहर पैर निकालनेको किसी तरह राज़ी नहीं होते। भाग्यके साथ ख़ाली हाथ जूझनेकी शक्ति हमलोगोंमें नहीं रही। हमलोग यह भूल गये हैं कि पचास-साठ वर्ष पूर्व भी हमारे बाप-दादाओंका दल समस्त भारतवर्ष देख चुका है। मैंने अपना रास्ता अपने आप ही खोजा। परमुखापेक्षी होकर बैठा नहीं, किन्तु सबके साथ मैं भी बाहर निकल पड़ा। यह उस बंगालीकी कहानी है, यह केवल कहानी ही तो नहीं है। यह है पञ्चतन्त्र हितोपदेशके वचन ! सुवचन !!

चटर्जी महाशय उदयपुर आ गये। राजसरकारका बड़ा काम करने लगे। उस कामके करनेके लिए उन्होंने बंगालीकी विद्या और बुद्धिबल पाया था। किन्तु बंगालीका नाज़ुक स्वभाव कहाँसे जाता। महाराणा फतेहसिंह सत्तर-पचहत्तर वर्षकी अवस्थामें भी उस मरुदेशकी गरम तपती दोपहरीमें सिरपर धूप झेलते हुए पहाड़ी जंगलोंमें रोज़ जंगली सूअर और पागल हाथीका शिकार करने निकल जाते थे। इस बातको चटर्जी महाशय ठीक तरहसे समझ न सके। गरमीके दिनोंमें आफ़िसमें केवल आरामसे काम करनेके लिए उन्होंने डेज़र्ट कूलर या एअर कन्डीशन्ड मशीन नहीं किन्तु एक सामान्य-सी खसकी टट्टी लगवा ली।

दोपहरको घोड़ेपर सवार होकर शिकारके लिए जाते समय दूरसे फतेहसिंहने इस व्यापारको एक उड़ती दृष्टिसे केवल देख भर लिया।

दूसरे दिन ठीक दोपहरके समय महाराणाके किसी कामके लिए इनकी बुलाहट हुई। ठीक दोपहरीमें। राजस्थानकी गरमी माघके शीतकी खोपड़ी भी चिटका देती है। किन्तु महाराणासे मिलनेका समय नहीं मिल सका। वे किसी अन्य काजमें अत्यन्त व्यस्त थे। उस ग्रीष्मकालकी भरी गरमीमें चटर्जी महाशय बाहर खड़े रहे। संन्ध्या हो आई तब उन्हें मालूम पड़ा कि आज महाराणाके पास समय नहीं है।

इसी तरह दूसरे दिन ठीक दोपहरको उन्हें तलब किया गया। उस दिन भी उसी तरह बाहर धूपमें खड़े-खड़े संन्ध्या हो गई किन्तु भेंट न

हो सकी । बेचारे वापस लौटे । उधर आफ़िसके कमरेमें लगी हुई ख़सकी टट्टीकी ठडकके लिए उनका मन बेचैन हो रहा था ।

और अगले दिन भी वही दोपहरकी तपस्या ।

उसके दूसरे दिन भी ।

अन्तमें चटर्जी महाशयने अपने दो एक घनिष्ठ मेवाड़ी मित्रोंसे परामर्श किया । आख़िर क्या बात है ? रोज़ ही महाराणा ठीक दोपहरको तलब करते हैं, और सन्ध्या तक बाहर खड़ा रखते हैं, किन्तु मिलते नहीं हैं । उसके दूसरे दिन भी बुलाते हैं किन्तु काम-वाम तो कुछ होता नहीं है और न उनको किसी ज़रूरी काग़ज़ पत्रके बारेमें आज्ञा ही मिलती है । यह तो बहुत गड़बड़ बात है ।

सब कुछ स्पष्ट हो गया, जब एक मित्रने सोच-समझकर यह बताया कि अनर्थकी जड़ यह ख़सकी टट्टी है । जहाँ महाराणा सहित सब लोग राजपूतानेकी गरमीसे परेशान हुए बग़ैर कामकाज करते हैं वहाँ इस तरहके सुख-साधनके प्रबन्धकी क्या ज़रूरत ? जो अपने शीशको शत्रुशीश सम तुच्छ समझकर रणक्षेत्रमें आगे बढ़कर लोहा लेते हैं, वहाँ इस प्रकारका भोग-विलास तो जाति चले जानेके बराबर ही है ।

चटर्जी महाशयकी आँखें खुल गईं । इसके बादसे सरदार प्रभास चटर्जी सब राजपूतोंके साथ उन्हींकी तरहसे कष्ट सहन करनेका अभ्यास करने लगे । जहाँ महाराणा कष्ट सहन करते हों, वहाँ समस्त देशको कष्ट सहना ही चाहिए । ऐसेमें गंगाको स्पर्श करती शीतल पवन और नरम मिट्टीके देशका एक व्यक्ति भोगकी इच्छा रखकर उनके साथ कैसे रह सकता था ।

यह शिक्षा प्रवासी बंगालियोंके गौरवके इतिहासका प्रथम पाठ है । सबके साथ मेल-जोल रखकर अपना काम करना होगा । इस शिक्षाके साथ-साथ चटर्जी महाशयको जो पुस्तक और बुद्धिकी शिक्षा मिली थी उसके ज़ोरसे वे उदयपुरके मिनिस्टर तक हो गये । आज उनके घरमें

विवाहके उत्सवमें समस्त मेवाड़ी गणमान्योंको निमन्त्रण दिया गया था।

प्रवासी बंगालीके कृतित्व और सम्मानमें मेरा हृदय भर आया।

प्रवासी बंगालीकी बातको लेकर प्रवासी राजपूतोंकी बात भी चल रही। मारवाड़ी व्यापारी अपनेको प्रवासी राजपूत नहीं मानते। इसका कारण यह है कि वे प्रवासी नहीं किन्तु विश्ववासी हैं। इसके अतिरिक्त राजपूत कहनेसे जो बात समझमें आती है व्यापारी कहनेसे वह समझमें नहीं आती। मित्रोंके मतसे प्रवासी राजपूतका नमूना है महावतख़ाँ।

महावतख़ाँ खरे मेवाड़ी थे। महाराणा प्रतापसिंहके बड़े भाई सगरसिंह-के पुत्र महीपतसिंह। पिताके समान इन्होंने भी देशको छोड़ दिया था। इसके बाद धर्म परिवर्तन कर देश तथा स्वजातिके विरुद्ध युद्ध भी किया था। उनकी वीरताका प्रमाण इसमें नहीं है कि ये राजपूतोंके विरुद्ध लड़े थे किन्तु स्वयं सम्राट् जहाँगीर—और उससे भी बढ़कर—बेगम नूरजहाँ तकको इन्होंने क़ैद कर लिया था। और यह असम्भव कार्य केवल राजपूत सेनाकी सहायतासे ही इन्होंने कर दिखाया था। महावतख़ाँकी वीरताकी बड़ाई करनेमें राजपूत कवियोंने कुछ भी रख नहीं छोड़ा।

सम्मुख युद्धमें हारकर राणा प्रतापने अरावलीके जंगलोंमें लुक-छिप कर लड़ाई जारी रखी। इधर मेवाड़को कैसे बसमें किया जाय? जहाँगीर उनके बड़े भाई सगरसिंहको चित्तौड़का राणा बना दिया। सात वर्षों तक मुग़ल सेनाकी सहायतासे वे सिंहासनपर बैठे रहे। किन्तु किसी भी मेवाड़-निवासीने उन्हें राणा कहना स्वीकार नहीं किया। अन्तमें उन्होंने भाई-पुत्र राणा अमरसिंहके लिए चित्तौड़ छोड़ दिया; जिसका धन था उसे लौटा दिया, और मुग़ल दरबारमें लौट गये। वहाँ बादशाहके सामने खुले दरबारमें अपने हृदयमें छुरी मारकर उन्होंने आत्महत्या कर ली। देशके प्रति विश्वासघातकताका प्रायश्चित्त इस प्रकार करके बिना युद्धके ही चित्तौड़ छोड़ दिया। प्राण देकर नमकहरामपनके लिए प्रायश्चित्त किया।

इन्हींका पुत्र था महावतख़ाँ। मुग़ल इतिहासमें इनकी कहानीपर सबसे

अधिक नज़र जमती है। इनके हृदयमें वीरता और मस्तकमें कौशल था। महावतख़ाँकी जीवनी एक वीरका स्वप्न है।

इनके पक्षमें वीरताकी लम्बी-चौड़ी कहानियाँ नहीं हैं। उस प्रकारकी वीरता तो और बहुतोंने दिखाई है। अच्छे सेनापतिके पास यदि अच्छा सैन्य दल हो तो युद्धमें विजय प्राप्त करना सहज होता है किन्तु महावतकी बहादुरी बुद्धिकी लड़ाईमें थी। नूरजहाँ, जिसकी नज़रोंमें लाखों तलवारोंकी चमक थी, सम्राट् जहाँगीर जिसके पैरोंके तलवे थे और शाहज़ादा खुर्रम हाथकी मुट्ठी, उस नूरजहाँके साथ बुद्धिकी लड़ाईमें और कौशलके दाव-पेचमें।

मुग़ल दरबारकी इस लड़ाईमें महावतकी बहादुरीकी दौड़ कहाँ तक थी इसे समझनेके लिए पहिले नूरजहाँको समझना पड़ेगा। शत्रुके बड़प्पनका विचार किये विना वीरत्वकी मात्रा ठीक तरहसे समझमें नहीं आ सकती। नेपोलियनके समान शत्रु होनेपर ही तो ड्यूक ऑव वेलिंगटनका इतना नाम हो गया।

आगरेके क़िलेमें नौरोज़के अवसरपर सब स्त्रियाँ मतवाली हो उठती थीं। फूलके समान एक कोमल सुन्दर वालिका भी वहाँ एक कोनेमें सिमटी-सी खड़ी थी। तरुण शाहज़ादा सलीमने उसके हाथोंमें कबूतर पकड़ा दिये। सावधानीसे पकड़ रखनेको कह, जिसमें वे उड़ न जायँ—वे कहीं चले गये।

वापस आकर सलीमने देखा कि किशोरीके हाथमें केवल एक ही कबूतर है। और दूसरा भी छूट जानेकी प्राणपणसे चेष्टा कर रहा है। बेचारी किशोरी क्या करे, दो कबूतर उसके छोटेसे हाथोंकी पकड़में रह न सकें। लाल होकर, सलीमने पूछा—एक कबूतर कैसे उड़ा दिया ?

और अधिक लाल होकर किशोरीने ओंठ फुलाकर और ग्रीवा भंगकर उत्तर दिया—देखो शाहज़ादा इस तरह !

यह कहते-कहते उसने दूसरा हाथ खोलकर कबूतर मुक्त कर दिया। बेचारा अपने साथीकी खोजमें जान लेकर भागा।

कविका मन रखने वाले कहानीकारोंने लिखा है कि उसी समय युवराजने अपने मनका साथी पा लिया।

नूरजहाँके रोमांसकी बातें उसकी मृत्युके पचास वर्ष बाद लोगोंने कही-सुनी होंगी। शेरअफ़गनका खून कराकर उसकी विधवा मेहर, बाल्य और किशोर कालकी प्रेमिका मेहरको अपने हरममें रखनेकी कहानी किसी समसामयिकने लिखी नहीं है। उस समयके किसी मुसलमान या विदेशी ईसाईने इस घटनाको नहीं लिखा है। तर्कके लिए यह कह दिया जाता है कि दरबारके ऐतिहासिक मुतमदखाँ, कामगार हुसेनी लाहौरी ने नूरजहाँके सौतपुत्र और महाशत्रु शाहजहाँकी आज्ञासे जो इतिहास लिखा है उसमें शाही परिवारकी कुत्साको ढक दिया गया है। किन्तु विदेशी पर्यटकोंको अकथ्य बातें लिखनेसे कौन रोक सकता है? नूरजहाँका प्रथम जीवन, शेरअफ़गनके साथ विवाह, उसकी अपघात मृत्यु, बादमें जहाँगीरके साथ विवाह, जहाँगीरपर असीम प्रभाव इत्यादि समस्त कथाएँ उन्होंने बड़ी रुचिसे लिखी हैं। सत्य घटना होनेपर ही तो मेहरको प्राप्त करनेके लिए शेरअफ़गनका खून करानेकी घटना लिखनेका लोभ वे रोक न सके।

असलमें बात यह है कि हाकिन्स सर टामस रो और एडवर्ड टेरीने जहाँगीरके दरबारमें अबाध्य आने-जानेका अधिकार प्राप्त कर लिया था। इतना मुखरोचक व्यापार उनके जाने बग़ैर नहीं रह सकता था। विलियम फिन्च और पियेट्रो डेला बाल्ले ये दोनों भी उस समय इस देशमें थे। विलायतमें ईस्ट इण्डिया कम्पनीको लिखे गये पत्रोंमें भी मुग़ल दरबारकी कई मज़ेदार घटनाओंका वर्णन थोड़ा-बहुत मिलता है। उनमें केवल मेहर-को प्राप्त करनेके लिए शेरअफ़गनकी हत्याकी कथा क्यों न हो?

जो भी हो, आगे चलकर मोहम्मद सादिक ताब्रेजी, कफ़ीखाँने खूब रंग देकर इस रोमान्सको सजाया है। इससे जहाँगीरके ऊपर नूरहजाँका

कितना असीम प्रभाव था इसका प्रमाण मिल जाता है। मुग़लदरबारमें जो राजपूत या मुग़ल थे उनमेंसे नूरजहाँके साथ जिन सयानोंकी लड़ाई हुई उनमें महाव्रतखाँ भी थे।

मैं जब राजवाड़ेमें था तब राजपूत चारणोंकी कविताओंमें इस प्रेम-कथाके सम्बन्धमें मुझे क्या मिला उधर दृष्टि डालता हूँ।

मरुभूमिके मध्य स्थित ऐक छोटी-सी जागीर पालाधीके चारणोंकी कविताओंमें यह कथा मिलती है। बाल्यप्रेमसे लेकर साम्राज्यकी अधीश्वरी होने तक और युवराज खुर्रमके ऊपर नूरजहाँकी शुभदृष्टि तक जो रसाल कहानी मुझे मालूम थी वह सब थोड़े हेर-फेरके साथ इनमें मिली। कविवर सूरजमलकी 'वंशभास्कर' पुस्तकमें भी नूरजहाँकी कथा है।

यदि आप यह पूछें कि कविताओंमें वर्णित ये सब कथाएं क्या सच हैं तो मैं केवल कर जोड़ कर इतना निवेदन करूँगा कि मैं इतिहासका न तो पण्डा हूँ न पण्डित। मुझे इतनी खोज-बीन करनेकी ज़रूरत ही क्या है? मुझे तो इसी बातकी प्रसन्नता है कि मैंने मुग़लोंकी कहानी राजपूत रचित कविताओंमें पा ली। इसके आगेका दायित्व इतिहासज्ञोंका है।

देखनेमें यह आया कि उन दिनों मेहरके पिता दरबारके एक बहुत बड़े उमराव थे। उनके भाई भी ऐसे-वैसे व्यक्ति नहीं थे। तब भी शेरअफ़ग़ान-की मृत्युके बाद लोगोंने देखा कि मेहर जहाँगीरके हरममें पहुँच गई। वहाँ उन्होंने सीना-पिरोना और चित्र बनाकर अपना ख़र्चा चलाया। चार वर्षों तक उनका बादशाहसे साक्षात्कार नहीं हुआ। किसीको इस बातका पता नहीं चला कि आखिर वहाँ हो क्या रहा है। किस तरहका यह प्रेम था?

इसी बीच वसन्त बीत चला। नौरोज़के समय सभी लोग स्फूर्तिमय एवं मस्त हो उठें। नूरजहाँ सादे वस्त्र पहने बाँदियोंके बीच बैठी थी। बादशाहने देखा और ठिठक कर खड़ा हो गया। अवाक् देखता रह गया।

बोला—स्त्रियोंमें सूर्यके समान मेहर इस तरह बाँदियोंमें क्यों बैठी है? चारों ओर रंगविरंगी भड़कीली पोशाकें पहने बाँदियाँ खड़ी थीं। रंगीन विजलीकी वत्तियोंके बीचमें सफ़ेद सादे वस्त्रोंसे ढके सूर्यके समान नूरजहाँने सीनेपर हाथ रखकर और थोड़ा सिर झुकाकर उत्तर दिया—बाँदियोंको उसीकी मर्ज़ीके माफ़िक रहना होगा जिसकी सेवामें वे नियुक्त हैं। वे सब मेरी बाँदी हैं। उन्हें मैं अपनी क्षमताके अनुसार पहनाती-सजाती हूँ। किन्तु शाहंशाह, मैं जिसकी बाँदी हूँ मुझे उसीकी मर्ज़ीके माफ़िक रहना होगा। अपने विचारोंके अनुसार नहीं।

इस कथा-वार्ताके सच-झूठकी जाँच करनेसे क्या लाभ? मैं तो केवल इतना ही कहूँगा कि इस उत्तरसे मेहरने आन्तरिकताके साथ अपनेको वहाँके अनुकूल बना लिया। उसकी रची एक कविता है जो लाहौरमें उसकी समाधिपर खुदी है:—

बर मज़ारे माँ ग़रीबाँ न चिराग़े न गुले।
न परे परवाना सोज़ न सदाये बुल-बुले॥

रूपसी मेहर केवल शिल्पी ही नहीं, बहुत ऊँचे दरजेकी रोमान्टिक कवि थी। मख़फी (अप्रकाश या पर्दानशीन) छद्मनामसे उसने 'दीवान-ए-मख़फी' लिखा है। (मख़फी छद्मनामसे और भी कई मुग़ल राजकन्याओंने भी कविताएँ लिखी हैं)। और एक व्यक्ति, ऐतिहासिक कफ़ीखाँने अपनी पुस्तक 'मुन्तखाबउल-लवाब'में नूरजहाँकी कई कविताओंको दिया है।

मेहर बादशाहसे न्याय चाहती है—

तुराने तुक़मये लालस्त वर क़वाए हरीर
शुदा ग्रस्त कतरए .ख़ूँ मिन्नते ग़ैर खाहगीर
दिल व सूरते न देहम ता सुराते सीरते मालूम
बन्दे इश्क-ए हफ़्ते दो दो मिल्लते मालूम

फ़ारसीकी इस कविताका भाव यह है:

तुम्हारे रेशमी जामेंके बटनमें जो लाल मणि देखती हूँ, उससे ऐसा लगता है मानो पीड़ितका खून न्याय चाहता है। मैंने जो तुम्हें अपना हृदय दिया है, वह केवल तुम्हारे मुखको देखकर नहीं। हज़ारों नीति-कथाएँ जानती हुई भी मैं तुम्हारे प्रेमकी पुजारिन हूँ।

केवल इतना ही नहीं। इसके बाद उसने क्या कहा या सोचा यह भी मेहरने कवितामें लिख छोड़ा है जिसका भावार्थ यह है:—

मुल्ला क़यामतके दिनसे भय करता है
उसने मेरे अन्तरमें स्वर्गका भय पैदा कर दिया है
किन्तु मैं तो तुम्हें ही चाहती हूँ
और विरहमें दग्ध होकर इस समयको बड़े भयसे काट रही हूँ

मनका साथी एक वार मिल जानेके बाद ही मनुष्य अपनेको धन्य समझता है।

इतना प्रताप और किसी राजमहिषीका नहीं हुआ। इतिहासमें इसकी तुलना नहीं है।

नूरजहांने केवल जहाँगीरको ही नहीं जीता। उसने समस्त उमरावों-को अपने तलवेके नीचे कर लिया। सभी उसका मुख जोहते थे और आँखोंके इशारेकी अपेक्षा करते थे। उसके प्रतापकी कोई तुलना नहीं थी। अपनी क्षमताको पूरी तौरसे प्रतिष्ठित रखनेके लिए वह जिसे चाहती थी अपनी खुशीसे उठाती-बैठाती थी। सौत-पुत्रों इत्यादिमें सबसे उपयुक्त शाहज़ादा थे खुर्रम (शाहजहाँ)। अपनी सुविधाके विचारसे उसने उनके साथ भी एक गोपन मधुर सम्पर्ककी तैयारी कर ली थी। इस कथाको अंग्रेज़ राजदूत सर टामस रो ने लिखा है। शाहजहाँ भा अपने पिताके नारीमण्डलमें हृदय खो वैठा था। नूरमहल (तवतक उसे नूरजहाँ या रानी वेगमके नाम नहीं मिले थे) अंग्रेज़ी फ़ैशनकी घोड़ा-गाड़ीमें शाहजहाँ-को विदा करती देखी गई। उसने शाहजहाँको मोती-हीरोंसे जड़ी हुई

पोशाक दी और बदलेमें और सब बातोंके साथ उसका मन ले लिया। दूसरे दिन शाहजहाँका दृढ़ मुख अत्यन्त चंचल हो गया। अंग्रेज़ राजदूतने उस मुखपर न जाने कितनी अकथ कहानियाँ और असह्य वेदना देखी। दिल खो गया मेरा।

और जहाँगीर ?

उन्होंने क्या नूरजहाँको राज्य चलानेके लिए और उसमें सांसारिक बुद्धिकी अधिकता देखकर ही उसके हाथोंमें सब कुछ सौंपकर उसे एकेश्वरी किया था।

नहीं। यह बात नहीं थी। उन्हें वह कितना प्यार करती थी, इसके बारेमें एक कहानी है। नूरजहाँने रानी होते ही अपनी सौत सुरा-सुन्दरीके हाथोंसे जहाँगीरको बचाना चाहा। बादशाह केवल रानी बेगमके हाथसे ही ढोली हुई ९ प्याली शराब पीनेके लिए राज़ी हो गये। रानी बेगमने इसे स्वीकार कर लिया और मदिरासे बचनेके लिए गाने-बजानेका भी विशेष प्रबन्ध किया। किन्तु इससे क्या बनता है ?

मुर्ग़ मुसल्लमकी जगह कहीं घास-पात खाया जा सकता है। किन्तु रानी बेगम ९ प्यालेसे अधिक एक भी देनेको राज़ी न हुई। अन्तमें चट-पट नूरजहाँका हाथ पकड़कर वे उसमें चुकोटी काटने लगे। रानीने इसका जवाब पलटकर घूसोंसे दिया। खास कमरेमें इस तरहका शोरगुल सुनकर बाजेवालोंने चीखना-चिल्लाना शुरू कर दिया। वे हाथ-पैर पटकने लगे। उन्होंने अपने कपड़े फाड़ डाले और बाल नोचने लगे। तुरन्त ही सब-कुछ छोड़कर बादशाह और उनके साथ ही उनकी बेगम बाहर निकल आये कि आखिर माजरा क्या है। बाजेवालोंने सोचा कि सिवाय इस कार्रवाईके स्वामी-स्त्रीकी मारपीट दूर करनेका और कोई उपाय नहीं है।

मारपीट तो थम गई, किन्तु रानीका मान भंग हो गया। कोपभवनमें जाकर उसके द्वार बन्द कर वे सो रहीं। यदि बादशाह उनका मुख देखना चाहते हैं तो उन्हें पैर छू कर क्षमा माँगनी होगी। तौबा-तौबा ! दिल्ली-

श्वरो वा जगदीश्वरो वा। उसे किसीके पैर छूने पड़ें ? पृथिवी उसके चरणकमल स्पर्श कर धन्य होती है।

जहँ-जहँ अरुण चरण चलि जाते।
तहँ-तहँ धरणी हई मझ गाते॥

किन्तु नूरजहाँ भी किससे कम थीं ? वे कोपभवनमें बैठी रहीं। बादशाह अपनी बादशाही लेकर बाहर बैठे रहे।

अन्तमें बुद्धिबलसे लोगोंने एक तरकीब सोच निकाली। अभिमानका साँप मर जाय और सम्मानकी लाठी न टूटने पावे। जहाँगीर यदि ऊपरके बरामदेमें खड़े हो जायँ तो उनकी छाया नीचेके बाग़में पड़ेगी। नूरजहाँ यदि नीचे आकर खड़ी हो जायँ तो उनके पैरोंपर वह छाया पड़ेगी। बहलाकर रानी बाग़में लाई गई। जहाँगीरने अपनी छाया उसके पैरोंपर डालते हुए कहा—देखो देखो, हमारा कलेजा तुम्हारे पैरोंके तलवेके नीचे लोट रहा है।

ऐसी थीं नूरजहाँ—जिन्होंने सबको अपनी मुट्ठीमें रख छोड़ा था किन्तु वे भी एक वीर राजपूतको वसमें न कर सकीं। मुसलमान होकर महावतख़ाँ नाम धारण कर लेनेसे क्या होता है ? मेवाड़के महाराणाकी सेनाको युद्धमें तितर-बितर कर पहाड़ और जंगलोंमें भगा देनेसे क्या होता है ? था तो वह राजपूत ही। तभी मुग़ल दरबारमें उसका मस्तक कभी नहीं झुका। यहाँ तक कि अपनी पुत्रीके विवाहके लिए बादशाहसे साधारण स्वीकृति लेनेके लिए भी नहीं। सब उमराव क्रोध और हिंसासे सुलगने लगे। इसी बीच हुआ यह कि उसके निर्दोष दामादके हाथ गरदनमें बाँध कर सबके सामने उसे बहुत पीटा गया, और क़ैदमें डाल दिया गया। महावतख़ाँ द्वारा दिया हुआ समस्त दान-दहेज भी ज़ब्त कर लिया गया। तेरा दोष नहीं हैं, तेरे ससुरका है। नूरजहाँके भाई आसफ़ख़ाँ थे इस दलके सरदार।

किन्तु इससे क्या राजपूत महावतख़ाँ डर गया ? क्या यह सम्भव हो सकता है ? क्या कोई संगीन बात देखकर महीपतसिंहके केसर बिल्लीकी दुमकी तरह टाँगोंमें दब जायँगे।

कभी नहीं—प्राण जाय किन्तु मान न जाय।

काश्मीरसे लौटते समय जहाँगीर काबुल गये। प्रायः सब सैन्य, अमीर-उमराव और मालखजाना झेलमके पार हो चुका था। केवल बादशाह उनके परिवारके स्वजन और कुछ नौकर-चाकर बाक़ी रह गये थे। इसी समय प्रातः वेलामें महावतने दो हज़ार राजपूत घुड़सवारोंसे नदीका पुल बन्द कर दिया। दरबारके ऐतिहासिक मोतम्मदख़ाँने 'इकबालनामा' पुस्तकमें लिखा है कि इतनी चुप्पी और सफ़ाईसे सारी कार्यवाही की गई कि हमाममें बैठे बादशाहको ज़रा-सी खबर तक न लगी कि क्या हो गया। खोजा लोगोंसे खबर पाकर जब वे बाहर आये तो देखा कि द्वारपर-पालकी प्रस्तुत है। हाथ जोड़े हुए महावतख़ाँने अदबसे आगे बढ़कर हुजूर की खिदमतमें फ़रियाद पेश की कि आसफ़ख़ाँ वग़ैरह उसे बेइज्ज़त करके मार डालना चाहते हैं और इसी डरसे ग़ुलामोंके ग़ुलाम महावतने हिम्मत करके शाहंशाहके क़दमोंके तले अपनेको हाज़िर कर दिया है। अगर जहाँ-पनाह उसकी गुस्ताखीको माफ़ करनेके क़ाबिल नहीं समझते हैं तो ग़ुलाम-की गर्दन उतार ली जाय।

केवल इतना ही नहीं। महावतख़ाँने यह निवेदन किया कि इसके बाद घोड़ेपर सवारी करके जहाँपनाहको महावतके साथ बाहर शिकारपर भी जाना होगा। जिसमें सब लोग यह समझें कि ऐसी बेअदबीका काम केवल बादशाहके हुक्म ही से हुआ है। उसे यह सब काम बेईमान नमकहराम आसफ़ख़ाँ कम्पनीके हाथोंसे अपनी स्वाधीनता बचानेके लिए करना पड़ रहा है।

बेक़ायदा बात हो जानेके कारण जहाँगीर शिकारी पोशाक पहननेके लिए तंबूके अन्दर जाना चाहते थे। एक बार नूरजहाँसे भी तो समस्त

बातें बताकर परामर्श लेना था। किन्तु महावत इसके लिए राज़ी नहीं हुआ। अब क्या किया जाय ?

पड़ गये मुग़लके हाथ
खाना खाना होगा साथ।

इधर इस गड़बड़ीमें नूरजहाँ छद्मवेशमें नदीके पार चली गई जहाँ सब लोग जमा थे। उन्होंने युद्धकी तैयारी भी कर ली थी। किन्तु पुल-पर राजपूतोंका क़ब्जा था। और बादशाह भी राजपूतोंके हाथोंमें थे।

महावत केवल लापरवाह वीर नहीं था। वह एक साथ ही चाणक्य और चन्द्रगुप्त था। इसीसे उसने यह दिखाया कि बादशाहने अपनी स्वाधीनताकी रक्षाके लिए ही उसका आश्रय लिया है। ठीक इसी तरह एक समय ब्रिटिश लोगोंने यह दिखाना चाहा था कि उनके आश्रयमें अपनी स्वाधीनता बचानेके लिए ही काले आदमियोंने उनके अधीन रहना चाहा है। और लड़ाई होती भी कैसे। क्योंकि जहाँगीरकी मुहर लगी आज्ञा उस पार भिजवा दी गई थी कि लड़ाई न की जाय। इधर राजपूतोंने पुल तोड़-ताड़कर समाप्त कर दिया।

मारे शर्मके मुग़ल लोग मर गये। उन्होंने सबेरे नदी पारकर आक्रमण करनेकी चेष्टा की। सबके आगे हाथीपर सवार रानी बेगम नूरजहाँ थी। उनकी बग़लमें उनकी प्रिय नातिन थी। इस लड़ाईमें महावतखाँके कौशल और साहसके कारण राजपूतोंने पग-पगपर मुग़लोंको हराया। बीच युद्धमें डरके मारे हाथीने नदीके गहरे जलमें भागना शुरू किया, तभी राजपूतोंके घोड़े आगा-पीछा देखे विना जलमें कूद पड़े और उनकी तलवारें अपना सीधा काम करने लगीं। नूरजहाँकी नातिनका हाथ राजपूतोंके तीरसे बिंध गया। किन्तु वह ज़रा भी नहीं घबड़ाई। बहुत इतमीनानसे वह डटी रही—मानो दिल्लीके गुलाबबाग़में फुहारेके पास दिलरुबा बजा रही हो।

हार कर आसफ़खाँ प्राण लेकर भागा। किन्तु अन्तमें पकड़ लिया गया। राजपूतोंने उसके प्राण नहीं लिये। किन्तु नूरजहाँ कहाँ जायगी? उन्होंने उसे महावतख़ाँके आने तक बन्दी रखा।

एक दिन विजयी सेनापतिने जहाँगीरको वरदान माँगनेकी अनुमति दी। उस दिन बन्दी सम्राट्के प्रति उनकी कृपादृष्टिका यह कारण था कि उन्होंने नूरजहाँको साम्राज्यकी शासनकर्त्रीके पदसे च्युत करके एक ठीक काम किया था। सम्राट्ने उमर खैयामकी कविताके समान एक प्रार्थना की—

'दे दो मुझे शराब औ सुल्ताना'

बुद्धिमान् सेनापतिने जहाँगीरको इन दोनों बातोंसे दूर रखा।

शराव—कारण इसलाममें शराव पीना हराम है।

सुल्ताना—कारण नूरजहाँ शराबसे भी अधिक मस्त कर देने वाला नशा है। और इसके साथ-साथ उसकी बुद्धि छुरीकी धारसे भी पैनी है।

महावतख़ाँ जानता था कि नूरजहाँ अपने हाथ और क़लमके ज़ोरसे साम्राज्य चला रही है और जहाँगीर नाम मात्रका सम्राट् है। जहाँगीर-कालकी मोहरमें लिखा रहता था—"बादशाह जहाँगीरका हुक्म—रानी बेगम नूरजहाँके नामकी छाप पाकर सोनेकी चमक सौगुना बढ़ जाती है।" महावतख़ाँ इसे नहीं भूला था कि जहाँगीर बार-बार यह घोषणा कर चुका है कि नूरजहाँ ही साम्राज्यकी एकेश्वरी है। उसे तो केवल 'एक सेर शराव और आध सेर मांस'के अलावा कुछ भी न चाहिए (इक़बाल-नामा-ऐ-जहाँगीरी)।

समस्त देश महावतख़ाँकी मुट्ठीमें था। जहाँगीर नाम मात्रका बादशाह रह गया था; राज्यका संचालन-सूत्र महावतके हाथमें था। उसने सोचा कि देशको यह बता देना चाहिए कि राज्यका समस्त कामकाज पूर्ववत् ही चल रहा है। इसीसे काबुल-यात्रा फिरसे शुरू हुई।

इस बार उस्तादोंके खेल शुरू हुए। महावतख़ाँने नालिश की कि राज्यका सुशासन ठीक तरह नहीं हो रहा है। एक व्यक्ति औरतके नाम और हुक्मसे राज्य चलाता है—यह देखनेमें बहुत बुरा लगता है। किन्तु गुलाम जी-जानसे ग़ुलाम ही है। यदि जहाँपनाहको विश्वास न हो तो बन्दा अभी अपनी तलवार खोलकर हाज़िर करता है और उसीके साथ अपना सर भी।

छिः छिः! तमाम हिन्दुस्तानका शहंशाह क्या कभी इस तरहकी भूल कर सकता है? लोग उसे अच्छी तरहसे पहचानते हैं। घुटनेके बल बैठे हुए महावतखाँको उन्होंने हाथ पकड़ कर उठाया। और पूरी तरहसे अभय दिया। राज्यशासनके संबंधमें इतना सदुपदेश देने वालेके प्रति उन्होंने कृतज्ञता दिखलाई। नूरजहाँको अपने पास नज़रबन्द होकर रहनेका हुक्म देकर उन्होंने अपनी भलमनसाहतका हाथोंहाथ प्रमाण दिया।

प्रसन्न होकर महावतखाँने एक प्रकाण्ड भोज दिया। तीन दिन और रात बराबर धूम मची रही। समस्त अमीर-उमरावोंने महावतख़ाँका प्रताप देखा, बादशाहके साथ उसका सम्मान देखा। रानी बेगमने अपने हाथोंसे उसे कई ख़िलतें दीं। सबके सम्मुख घोषणा की कि दुनियामें महावतख़ाँके समान प्रिय और विश्वासी उमराव और कोई दूसरा नहीं है। न है और न होगा ही। सम्भवतः होना उचित भी नहीं है।

उस दुर्दान्त शीतमय काबुलसे लौट आनेपर राजपूतोंके सिर दुर्दान्त गरम हो उठे। मुग़ल और अफ़गान मन ही मन राजपूतोंसे चिढ़ उठे। और उनके असद्व्यवहारकी नालिश करनेके लिए महावतख़ाँके दरवाज़ेपर गये। बात सीमाके बाहर पहुँच चुकी थी।

इधर जहाँगीरने मौक़ा देखकर और घुमा-फिराकर महावतसे कहा कि नूरजहाँ तथा उसके भाई-बिरादरकी दपट उससे कभी भी न सही जाती। इस दुरवस्थासे महावत ही ने उसे बचाया है। सिर्फ़ इतना ही

नहीं, महावतपर उसका विश्वास भी पक्का जम गया है। इसके अलावा और किसीपर नहीं।

विश्वास नहीं हुआ ?

बग़ैर इसके उपाय ही क्या था। जहाँगीरने एक दिन अपने हाथोंसे सही करके फ़रमान दिया कि रानी बेगमकी गरदन उड़ा दी जाय। कारण यह था कि रानी बेगम महावतपर छिपी नज़र रखती थी और षड्यन्त्र कर रही थी। महावत उस फ़रमानको लेकर नूरजहाँके सामने हाज़िर हुए।

रानी बेगमका प्राणदण्ड। रानीने विश्वास कर लिया। मुग़ल राज्यमें सभी कुछ सम्भव है। उन्होंने मरनेकी तैयारी की। उसके पूर्व उन्होंने अपने स्वामीको अन्तिम बार देखनेकी तैयारी की। जिन हाथोंसे बहुत कुछ पाया है उन हाथोंका एकबार चुम्बन कर लेना चाहती थीं।

महावीर महावत इसपर आपत्ति न कर सके। स्त्री-स्वामीकी अन्तिम भेंट हो देनेके लिए उनका दिल पसीज उठा। नूरजहाँ वहीं रह गई और वे मौतके परवानेकी बात बिलकुल भूल गये। तलवारका भयंकर खेल देखनेके अभ्यस्त नेत्र अपने चारों ओर बुने जाते हुए मकड़ीके जालेको न देख सके।

तब भो बीच-बीचमें जहाँगीर महावतको सावधान कर देते थे कि नूरजहाँका विश्वास न किया जाय। और आसफ़ख़ाँके पुत्र (भविष्यके शाइस्ताखाँ) की पत्नी ख़ून-ख़राबीपर आमादा है।

महावतख़ाँके तम्बूमें महासुखसे निश्चिन्त जीवन व्यतीत करते-करते जहाँगीर प्रायः रोज़ ही शिकार खेलने जाने लगे। फिर दरगाह मसजिदमें पीरोंके निकट तक पहुँचने लगे। राजपूत पहरेदार साथमें जाते थे। इससे अधिक और चाहिए भी क्या ?

अफ़गान और मुग़लोंने राजपूतोंसे छिपाकर शाही सेना बढ़ाना शुरू कर दिया। बादशाहके चारों ओर अधिक सेना हो जानेसे लोग तरह-

तरहकी बातें कहेंगे इससे राजपूतोंकी संख्यामें काफ़ी कमी कर दी गई। इसके अतिरिक्त नूरजहाँके गुप्तचर भी इधर-उधरसे आकर जमा होने लगे। कहा यह गया कि अपना देश देखने आये हैं। "काबुल, कन्धहार और मुल्तान इत्यादि अत्यन्त सुन्दर जगहें भी तो हैं।

काबुलसे लौटते हुए एक दिन बादशाहकी घुड़सवार सेना देखनेकी इच्छा हुई। और कुछ नहीं केवल दो पंक्तियोंमें सेना खड़ी रहेगी और बादशाह उसके बीचसे निकलेंगे। महावतख़ाँको उन्होंने कहला भेजा कि उनके आनेकी ज़रूरत नहीं है। जिसके सुशासनमें बाघ और बकरी एक घाट पानी पीते हैं वहाँ सेनापतिको हमेशा बादशाहके साथ रहनेकी ज़रूरत नहीं है। इसके अलावा पुरानी सेना और नई सेना यदि एक जगहपर इकट्ठा हो जाती तो बेकारका झगड़ा हो जानेकी सम्भावना है और ख़ून-ख़राबी भी हो सकती है। इसलिए आज बादशाह केवल नई सेना ही को देखेंगे। महावतख़ाँने अपने तम्बू उखाड़ लिये और उस दिन-का मार्च शुरू कर दिया।

महावतख़ाँने वही किया। इधर जहाँगीर नई सेनाके बीचमें पहुँचते ही चारों ओरसे घिर गये। राजपूत हतप्रभ हो अलग जा पड़े।

पासेमें महावत हार गये। किन्तु अधिक काल तक नहीं। उसे नूरजहाँने दाक्षिणात्यमें विद्रोही सौतपुत्र शाहज़ादा ख़ुर्रमके विरुद्ध युद्ध करनेके लिए भेजा। किन्तु राजपूत पुत्र महावतने राजपूतनी माँके बेटे ख़ुर्रमके साथ योग देकर दिल्लीके ऊपर अपनी क्षमता रखनेका मार्ग पकड़ा। अन्त-में जब ख़ुर्रम गद्दीपर बादशाह शाहजहाँ होकर बैठे तब महावतख़ाँ अजमेरमें उनके प्रतिनिधि और सर्वोच्च सेनापति बने।

आज भी राजपूत लोग महावतख़ाँकी स्मृतिको प्रवासी राजपूत वीरकी स्मृति यादकर पूजा करते हैं। धर्मसे उनके मुसलमान होनेसे क्या हुआ, उनका वीरधर्म तो राजपूत था। उन्होंने बादशाहको अपनी मुट्ठीमें आ जाने-पर भी मारा नहीं, शत्रुको पकड़कर भी छोड़ दिया। अपने स्वामीके

आदेशसे काबुल तक युद्ध किया और अन्तमें मरे राजस्थान ही में। जब विपत्तिमें निःसहाय और संबलहीन हो गये तो आश्रय लिया वहीं मेवाड़के पहाड़ोंमें और वहीं शरण ग्रहण किये हुए शाहज़ादा खुर्रमके साथ हाथ मिलाकर फिर आगे बढ़े। वीरताके साथ-साथ चकाचौंध पैदा कर देनेवाला सेनापति और दूसरा मुग़ल दरबारमें नहीं हुआ। केवल वीर ही नहीं महान् भी।

जिससे बुद्धिकी लड़ाईमें वह हार गया, मुग़ल साम्राज्यका एकेश्वर स्वामी हार गया, उसी नूरजहाँका पतनके दिनोंमें उसने कभी अनिष्ट करनेकी चेष्टा नहीं की। स्वामीकी मृत्युके बाद नूरजहाँका जहान्को जगमगा देनेवाला नूर जैसे अकस्मात् एक फूँक मारकर किसीने बुझा दिया। किसीने उसके लिए दुःख नहीं किया, आँसू नहीं बहाये, दीर्घश्वास नहीं छोड़ी। अस्तगामी सूर्यकी पूजा करना संसारका नियम नहीं है।

कवि हसरत शेरवानीने उसकी क़ब्रपर एक बहुत दुःखपूर्ण कविता लिखी है :—

जिसके पैरोंसे कि करते आर्ज़ू गुल बार-बार
सूखे काँटोंका पड़ा है ढेर उसकी क़ब्रपर
सेजपर फूलोंके सोती थी कभी जो नाज़नी
हाय उसकी क़ब्रपर एक पंखुड़ी तक भी नहीं।

इस कथाको सुनकर मैंने सोचा कि उस क्षमाहीन शत्रुताके युगमें, शोध-प्रतिशोधके युगमें महावतख़ाँ अन्ततक जयी होते हुए भी नूरजहाँके प्रति परम उदासीन क्यों रहा।

मेवाड़ी मित्र बहुत उमंगसे महावतख़ाँकी कहानी कहते हैं। उसकी बुद्धिकी, वीरताकी और शौर्यकी प्रशंसा करते हैं। एक प्रवासी राजपूतने विधर्मी शत्रुके दरबारमें कितना दबदबा जमा रखा था। कहते-कहते उनका हृदय भर आता है और मन गद्गद हो जाता है।

मेरी भी ऐसी ही दशा हो गई। राजपूत चारणोंने बेकार ही महावत-ख़ाँकी कथाको इतना बढ़ाकर नहीं कहा हैं। विना राजपूत हुए कोई इतना बड़ा वीर हो ही नहीं सकता—चारणोंकी कवितामें यह ध्वनित होता है। इसीसे उन्होंने उसे महाराणा प्रतापके भाई सगरसिंहका पुत्र महावत बनाकर छोड़ दिया है। कर्नल टाडने भी इस कहानीको अपनी पुस्तकमें लिखा है। दूसरी ओर मुग़ल दरबारके उमरावोंकी जो प्रामाणिक पुस्तक मासिर-उल-उमरा है उसमें लिखा है कि महावतख़ाँ ईरानके शीराज़ नगरका रहनेवाला था। उसका असली नाम ज़माना बेग था। राजपूतोंके साथ उसका सम्बन्ध केवल इतना था कि वह राजपूत सेना लेकर ही लड़ता था।

यह चाहे जो कुछ भी हो। मैं राजवाड़ेमें इतिहास लिखने नहीं आया हूँ। मेवाड़-निवासियोंके समान मेरी दृष्टिमें भी महावत राजपूत ही था। सम्पूर्ण रूपसे और निःसन्देह।

जिसके शौर्यमें चमक हो और जीवनमें रोमान्स हो वैसा राजपूत।

: ४ :

राजकन्याको पक्षीराज घोड़ेपर बिठाकर राजकुमार उल्काके समान वेगसे अदृश्य हो गये।

बड़े-बड़े खपरैलके समान दाँतोंवाले और खम्भोंके समान हाथोंवाले राक्षसोंका दल मनुष्यकी गन्ध पाकर 'हाउ माउ खाँउ' करता हुआ दौड़ पड़ा। राजकन्या और राजपुत्रको पकड़ना ही होगा। रास्तेमें भीषण युद्ध हुआ किन्तु उन्हें कौन पकड़ सकता है?

राजकन्याका जैसा रूप था वैसे ही गुण। उसने स्वयंवर करके राज-पुत्रको वरा था। और राजपुत्र? उसकी वीरताके सामने खड़ा होनेवाला

कोई पैदा ही नहीं हुआ। और उसपरसे उसने धनुषभंग करनेवाला प्रण किया था—कि राजकन्याका उद्धार राक्षसोंके हाथ अवश्य करेगा। उसके सामने कौन शत्रु सिर उठा सकता है ?

यदि सिर उठा सकता तो फिर दादीकी कहानी कैसे चलती। शीतकी भरी सन्ध्या, लीपा-पुता हुआ बरोठा, रेड़ीके तेलके टिमटिमाते हुए दीयेके धुँधले प्रकाशमें पोतेको सुनाई हुई कहानी मिट्टी न हो जाती। राजकन्याको तो उद्धार करके लाना ही होगा। राजपुत्रको राक्षसोंको हराना ही होगा।

यह कोई हिन्दुस्तानी सिनेमाकी कहानी तो है नहीं कि नायक-नायिकाके बीचमें किसी एक व्यक्तिको—यदि दो व्यक्ति हो जायँ तो और अच्छा—चिताकी आगपर सुलाना ही होगा। उसके धूएँके साथ-साथ गला फाड़ देनेवाला तथा हृदयको पिघला देनेवाला गीत भी सुनाना होगा। जब तक यह सब नहीं होगा कहानीका अन्त नहीं हो सकता।

किन्तु दादीके लीपे-पोते बरोठोंमें आरामसे गरमाते हुए बैठकर कहानीका ऐसा बेतुका उपसंहार नहीं हो सकता। राजपुत्र राजकन्याका उद्धार करेगा ही। लड़ाईमें राक्षस हार जायँगे और पक्षीराजके ऊपर आकाशसे पुष्पवृष्टि होगी। तभी तो दादीकी गोदकी गरमाहटमें पोता चुपचाप सो जायगा।

किन्तु इस तरहका सुविधाजनक उपसंहार सदा नहीं होता। बहुधा राक्षस मायाजालसे ज़हरीले वृक्ष उगा देते हैं। उत्तरी हवाके बहावके साथ सायँ-सायँ करते हुए उसके विषैले काँटे चारों ओर छूटने लगते हैं। और ज़हरीली आग जलने लग जाती है। राजकन्या और राजपुत्र राक्षसोंके हाथों मारे जाते हैं। सारा राज्य जलकर भस्म हो जाता है।

पृथ्वीराज–संयुक्ताकी कहानी ठीक इसी रूपकथाकी कहानीके समान रोमांचकारक है। उसी कहानीके समान राक्षसी सेनाको हराकर राजपुत्र राजकन्याको अपने महलमें लाकर सुखपूर्वक रहता होता यदि राजकन्याका

पिता उत्तरसे बदला लेनेके लिए सहायता न माँगता। इसलिए इसके बाद वे दोनों चिरकाल तक सुख स्वच्छन्दतासे अपने घरमें रहने लगे इस प्रकार-की आनन्दकी परिणति उनके भाग्यमें नहीं लिखी थी।

अजयमेरु अर्थात् अजमेर नगरका सबसे बड़ा वीर था पृथ्वीराज चौहान। सोमेश्वर चौहानकी राजधानी अजमेरमें तथा अनंगपाल तोमरकी दिल्लीमें थी। उस समय कन्नौजका राजा विजयपाल था। विजयपालके दिल्ली आक्रमण करनेपर अनंगपालने सोमेश्वरसे सहायता माँगी। इन दोनोंने मिलकर उस समय उत्तर भारतमें सबसे बड़े अर्थात् चक्रवर्ती राजा विजयपालके हाथोंसे दिल्लीकी रक्षा की।

इसके बाद पृथिवीके इतिहासमें सर्वदा जैसा होता आया है वैसा ही यहाँ भी हुआ। अर्थात् युद्ध विग्रहकी शान्ति विवाहसे हुई। अपुत्रक अनंग-पालके दो कन्याएँ थीं। एकका विवाह सोमेश्वरके साथ हुआ और दूसरी छोटी कन्याका विजयपालके साथ। उन दिनों विवाहके मंत्रके विना सन्धि-की मन्त्रणा ठीक तरहसे जमती नहीं थी।

इसीलिए अनंगपालको ठीक तरहसे शान्त करनेके लिए एक कन्या उन्हें सौंप दी गई।

पृथ्वीराज और जयचन्द मौसेरे भाई थे। दोनोंका सम्बन्ध जितना निकट था, हिंसा ज्वाला भी उतनी ही अधिक थी। यदि ऐसा न होता तो हिन्दुस्तानकी जलवायुके अनुकूल न होता।

इनके अतिरिक्त जयचन्दके एक बड़े राज्यके अधिकारी होते हुए भी अनंगपाल पृथ्वीराज ही को प्यार करते थे। और पृथ्वीराज ही को उन्होंने दिल्लीका राजपाट दिया। इसने भी जयचन्दके मनमें असन्तोष पैदा कर दिया। आगमें घीकी आहुति पड़ गई।

पूर्व पुरुषोंकी यह विरासत क्या अभी तक भी हम छोड़ सके हैं? अभी भी हम लोग सब कुछ सहन कर लेंगे, किन्तु आत्मीय स्वजनोंकी उन्नति सहन नहीं कर सकते।

जयचन्दसे भी नहीं हुई। पृथ्वीराजके समान सुपुरुष और वीर पुरुष राजवाड़ा तो क्या और कहीं भी नहीं था। उनका समस्त जीवन वीरत्वका जीवन था, जयमाल प्राप्त करनेका जीवन था। पृथिवीमें जब तक शिलेवरी—शौर्य—रहेगा तब तक पृथ्वीराजका भी नाम रहेगा। वीरगाथाओंमें चौहानोंका आसन वहुत ऊँचा है। किन्तु उनमें भी पृथ्वीराजका सिंहासन सर्वोपरि है।

चारणोंने अपने गीतों-द्वारा उनकी बहुत-सी कहानी हम तक पहुँचा दी है। उनकी रसिकता, जीवनका एक शिल्पीके समान उपभोग करना, और मृत्युको वीरोंके समान वरण करना इत्यादिको चारणोंने बहुत-से गीतोंमें अतिरंजित कर रखा है। उस समयके प्रत्येक राजाकी सभामें उसका कीर्तिगान होता था। इससे प्रत्येक राजाके मनमें पृथ्वीराजके प्रति हिंसा जाग्रत हो गई थी और प्रत्येक राजकन्याके नयनोंमें उसका स्वप्न सँजोया रहता था। इस लोकमें रूपकथाका राजपुत्र यदि कोई हो सकता था तो वह पृथ्वीराज ही था।

इसी रूपकथाके राजपुत्रके गलेमें स्वयंवर-सभामें उसके सबसे बड़े शत्रु जयचन्दकी पुत्री संयुक्ताने माला पहना दी।

समस्त उत्तर भारत आगसे जल उठा। जयचन्दका मन भी जल उठा। स्वयंवर-सभामें निमन्त्रित समस्त राजाओंके मन भी जल उठे। और उसी लहूलुहान ज्वालामें राजवाड़ेसे लेकर बंगाल तक समस्त देशके स्वाधीन हिन्दू राजा झुलस उठे।

दिल्ली और अजमेरके अधीश्वर तथा इतने नाम और यशके अधिकारी पृथ्वीराजकी समृद्धिको जयचन्दकी ईर्ष्या सहन न कर सकी। अपनेको एक-छत्र राजा स्वीकार करानेके लिए जयचन्दने राजसूय यज्ञ किया। किसी राजाकी यज्ञमें उपस्थित होनेकी द्विविधाको दूर करनेके लिए दूसरा प्रवल-आकर्षण था राजकन्या संयुक्ताका स्वयंवर।

उस संयुक्ताके रूपका वर्णन यह है :—

कुट्टिल केस सुदेश, पौह परिचियत पिक्क सद ।
कमल गन्ध वय संध, हंस गति चलत मंद मद ।
सेत वस्त्र सोहै सरीर, नख स्वांति बुन्द जस ।
भवर भँवहि भुल्लहि सुभाव मकरन्द वास रस ।
नैन निरखि सुख पाय सुक यह सुदिव्य मूरति रचिय ।
उमा प्रसाद हर हेरियत मिलहि राज पृथिराज जिय ।

हिन्दी भाषाके आदि कवि तथा महाकवि चन्द वरदाईके 'पृथ्वीराज रासो' महाकाव्यमें अनेक स्थलोंमें इस प्रकारके रसाल वर्णन शुक-सारिका, डाकिनी-योगिनी अथवा अलौकिक प्राणियों द्वारा कहलाये गये हैं। रासो महाकाव्यमें संस्कृतके अतिरिक्त अरवी फारसीके भी अनेकों शब्द हैं। और राजस्थानीके चलते हुए शब्दोंका तो कहना ही क्या। प्राचीन हिन्दी रचना-का प्रथम परिचय हमें चन्द वरदाईकी लेखनी द्वारा मिलता है। उनका जन्म लाहौरमें हुआ था और मुसलमानोंके साथ उनका संसर्ग अधिक था। ये पृथ्वीराजके सभाकवि और अभिन्नहृदय सखा थे। 'रासो' में काव्य-रसके जो मनमोहक पुष्प खिले हैं उनकी सुगन्धसे मन मुग्ध हो जाता है। इस ग्रन्थकी वीर और श्रृंगार रसकी कविता बड़ी मनमोहक है।

शास्त्रोंमें जो लक्षण पद्मिनी नारीके बताये गये हैं वे सब संयुक्ता (रासोकी भाषामें संयोगिता) में थे। पृथ्वीराज भी कम नहीं थे। 'केमनो वीर मूरति तार, माधुरी दिये मिशा' रवीन्द्रनाथकी इन पंक्तियोंकी सार्थ-कता पृथ्वीराजके इस वर्णनसे होती है।

सम्भरि नरेस सोमेस पूत, देवन्त रूप अवतार धूत।
सामन्त सूर सब्बै अपार, भूजान भीम जिमि सार भार।
जिहि पकरि साह साहाब लीन, त्तिहुँ बेर करिय पानीप हीन।
सिंगिनि सुसद्द गुन चढ़ जंजीर, चुक्कै न सबद बेधंत तीर।

बलि बैन करन जिमि दान पान, सत सहस सील हरिचन्द समान ।
साहस सुकर्म विक्रम जुवीर, दानव सुमत्त अवतार धीर ।
दस चारि जानि सब कला भूप, कन्द्रप्प जानि अवतार रूप ।

ऐसे पृथ्वीराज (रासोकी भाषामें पृथिराज)

'सहस किरन झलहल कमल रिति समीप वर विन्द' की सुख्याति सुनकर राजकन्याके समस्त अंगोंमें रोमांचकी तरंग प्रवाहित हो उठती थी ।

चन्द कविका आदि हिन्दी काव्य पढ़ते-पढ़ते आदि बंगाली वैष्णव पदावलीकी ध्वनि धीरे धीरे कानोंमें गूँजने लगती है—

सुनन श्रवण पृथिराज जस, उमग बाल विधि अंग,
तन मन चित चहुवान पर, बरयो सु रत्तह रंग !

किन्तु चौहान कहाँ हैं ?

वे स्वयंवर-सभामें नहीं आये थे । निमन्त्रण उन्हें भी दिया गया था । किन्तु निमन्त्रण पाकर जो राजे आये थे वे सब जयचन्दको चक्रवर्ती राजा स्वीकार करते । दिल्लीके अधीश्वर शाही युगके पहलेसे ही अपनी घोषणा जगदीश्वर कह-कह कर चुके थे । किन्तु बारहवीं शताब्दियों तक दिल्लीका वह सम्मान नहीं था । यद्यपि यह सत्य है कि महाभारत काल हीसे लोग इन्द्रप्रस्थ अंचलके गुरुत्वको समझने लगे थे । इसीलिए यहाँ युधिष्ठिरने अश्वमेध यज्ञ किया था । किन्तु उस समय तक 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा'' मानने लायक स्थिति नहीं हुई थी ।

क्रोधमें आकर जयचन्दने इस राजसूय यज्ञमें पृथ्वीराजके जिम्मे एक छोटेसे कामका भार रखा । कामके लिए वे कैसे आते ? इधर जयचन्दने अनुपस्थित राजाकी एक सुवर्णमूर्ति सभाके द्वारपालके स्थानपर रखवा दी ।

विदेशी शत्रुके विरुद्ध हिन्दुस्तानके द्वारपर जो महाराना पहरा दे रहे थे उसीकी सुवर्ण मूर्ति कन्नौजके राजाके राजसूय यज्ञके सभाद्वारपर पहरा देने लगी ।

राजकन्या माला किसे पहनायेगी ?

काव्योंमें न जाने कितनी स्वयंवर सभाकी कथाएँ मिलती हैं। दमयन्ती नलसे प्रेम करती थी। किन्तु वरणमाला पहनाते समय उसने देखा कि कई देवता नलका छद्मवेष धारण किये हुए वहाँ विराजमान हैं। अपनी बुद्धिके ज़ोरसे और प्रेमके बलपर उसने असली प्रेमीको खोजकर वरण किया। देवताओंका दल उसे ठग न सका। सीता अथवा द्रौपदीके स्वयंवरमें किसी प्रकारका छल-कपट नहीं हुआ था। उसमें सीताको प्राप्त करनेकी शर्त ही धनुर्भङ्ग थी। और लक्ष्यभेद करनेवालेका वरण द्रौपदी करेंगी। किन्तु सीता या द्रौपदीको पिताकी इच्छाके विरुद्ध किसीको वरण नहीं करना था, और न उन्हें अनुपस्थित प्रिय ही को वरण करना था।

एकाकी और साधारण रक्तमांसकी बनी संयुक्ताके सम्मुख बड़ी कठिन समस्या आकर खड़ी हो गई। जिसे मन चाहता था उसके पानेका कोई उपाय नहीं था। न वे उपस्थित थे और न हो सकते थे। उसे यह भी तो नहीं मालूम कि वे स्वयंवरा संयुक्ताको ग्रहण भी करेंगे। यदि वे चाहते भी हैं तो उससे विपत्ति और शत्रुतामें कमी नहीं आयेगी।

आजकलकी तरुणियाँ जो माता-पिता द्वारा अवांछित व्यक्तिके प्रेममें पड़ चुकी हैं उस समयकी स्वयंवर प्रथाकी ओर सतृष्ण नेत्रोंसे देखेंगी। दीर्घ श्वास छोड़कर वे सोचेंगी कि हाय, अकस्मात् यदि किसी मन्त्रबलसे, स्वयंवर या गान्धर्व विवाह इत्यादि सुन्दर-सुन्दर प्राचीन प्रथाएँ लौट आतीं तो न जाने कितनी समस्याएँ सहज हीमें मिट जातीं। किन्तु उस मार्गमें भी कितनी बाधाएँ हैं, कमलमें कितने काटे हैं—उसे भी एक वार इस कालकी प्रेमिकाओंको विवेचना करके देखना चाहिए।

और प्रेमिकोंके बारेमें भी भूलनेसे काम नहीं चलेगा। इस कालके क़ायदे-क़ानून अत्यन्त कठोर हैं। उन्हें मानकर न चलनेसे सरकारी रामगिरिपर विरहयापन करने जाना पड़ेगा। इस बातको हमेशा मनमें रखकर बहुत समझदारीके साथ प्रेमके मार्गमें पैर रखना होगा।

क़सम खाकर प्रत्येक सुरसिका पाठिका यह कहेगी कि ऐसी अवस्थामें आज तककी कोई तरुणी किसी अज्ञात और अनिश्चित प्रेमीके गलेमें माला डालनेके लिए व्याकुल होते हुए भी साधारणतः अपनेको किसी तरहकी पकड़में नहीं आने देगी। अधिकसे अधिक यह करेगी कि आहें भरकर शेली और रवीन्द्रनाथकी कविता पढ़ लेगी, मेट्रो सिनेमामें पर्देपर अपने मनकी तसवीर देखकर अँधेरेमें एक आध बूँद आँसू बहा देगी और घरमें वापस आकर एक आधा कौर खाकर पड़ रहेगी। बहुत हुआ तो खानेकी एक दो अच्छी डिशोंको हाथ तक न लगायेगी।

किन्तु संयुक्ता रूपकथाकी नहीं इतिहासकी खरी राजपूतनी थी। सभामें उपस्थित समस्त राजाओंको विस्मयमें छोड़कर और अपने पिताके विद्वेषकी सम्पूर्ण रूपसे अवहेलना कर वह आगे बढ़ गई। राजसभामें उपस्थित राजाओंके रूप गुणका वर्णन कवि लोग कर रहे थे। किन्तु उस सबको कानोंसे सुने बग़ैर ही वह सभा-द्वारके निकट पहुँच गई। उसके पिता अवाक् होकर देखते रह गये। क्या द्वारके पास गैलरीमें जो उपराजा या सामन्तराजा बैठे हैं उनमेंसे किसीके भाग्यसे माला बदी है। इसी आशासे वे उस ओर ताकते रह गये। किन्तु राजकन्याको बाधा देनेका साहस किसीमें न हुआ। किसीके मनमें बाधा देनेकी बात भी न उठी–कि आकस्मिक एक घटना घट गई।

द्वारपर आकर संयुक्ताने द्वारपालके भावसे खड़े किये गये पृथ्वीराज की स्वर्णमूर्तिके गलेमें जयमाला डाल दी। रामायणमें सीताकी स्वर्णप्रतिमा स्थापित कर रामके यज्ञ करनेकी कथा आती है। किन्तु वहाँ भी राम और सीतामें परस्पर प्रेम था, दाम्पत्य सम्बन्ध था और धर्मको बन्धन था। किन्तु इधर संयुक्ताकी ओर केवल पूर्वरागका असीम उद्भ्रान्त प्रेम था। संसारमें जिसे कोई स्वीकार नहीं करता।

किन्तु हाय, हृदयका बन्धन सबसे बड़ा बन्धन है। किसी मन्त्रसे उसे रोका नहीं जा सकता, किसी मन्त्रणासे उसे वशमें नहीं किया जा सकता

अथवा किसी संहिता या समाजसे उसका विचार नहीं किया जा सकता।

संयुक्ताने कहा—देश, जाति और गुणोंके विचारसे जो राजा वरणीय है मैंने उसीको वरण किया है। उनका शुभ नाम है चौहानराज सोमेश्वर-पुत्र पृथ्वीराज। मैंने मन ही मन खूब विचार करके उनके गलेमें गान्धर्व मतसे जयमाला पहनाई है। वे मुझे ग्रहण करें।

जयचन्द मारे क्रोधके लाल हो गये। किसी तरह उन्होंने अपनेको सम्भाला ओर बोले—बेटी, तुमने भूल की है। फिरसे राजाओंके बीचमें घूमकर अपना वर पसन्द करो। प्रथम बार स्वयंवर ठीक नहीं हुआ।

संयुक्ता राजाओंके बीचमें घूम आई और अत्यन्त परिष्कृत भावसे उन्हें सम्बोधनकर बोली—आप लोग विचार कीजिए। यश और गुणमें जो श्रेष्ठ है जातिमें जो उत्तम है, जिसके देश, पिता, पितामह इत्यादि उत्कृष्ट हैं उसीको मैं ग्रहण कर रही हूँ। जो देव-तुल्य हैं मैं उसीके पास जाना चाहती हूँ। और उसीके प्रशस्त कण्ठमें मैंने माला डाली है।

आपत्ति करते हुए चीखकर जयचन्द बोले—बेटी, तुमने पतिका वरण ठीक तरहसे नहीं किया है। तुम फिरसे राजाओंके बीचमें घूमकर अपना स्वामी ढूँढ़ो।

तृतीय बार भी राजकन्या उसी स्वर्णमूर्तिके पास आकर खड़ी हो गई। तृतीय बार भी कवियोंके दलने सब उपस्थित राजाओंके वंश और गुणा-गुण एक-एक कर बखान किये।

संयुक्ताको पृथ्वीराजके गलेमें दो बार वरमाला डालते हुए देखकर राजाओंके नेत्र तीव्र हिंसासे जल उठे। किन्तु उनके मर्मस्थलमें यह बात भी आये विना न रही कि राजकन्याका हृदय पृथ्वीराजपर अत्यन्त गम्भीर भावसे अनुरक्त हो चुका है। यहाँ सब लोगोंकी आँखोंके सामने संयुक्ताने चौहान-राजके कण्ठमें वरमाला पहनाई है, और उसने ऐसी विह्वल दृष्टिसे स्वर्णमूर्तिकी ओर देखा है जैसे इन्द्राणी-शची इन्द्रको उत्कण्ठित होकर देखती है।

और जयचन्द ? न वह उसको रोक हीं सके न उसका हाथ ही पकड़ सके। क्रोधमें जलते-भुनते, गहरी साँस निकालते, मुख नीचा किये चुपचाप अन्तःपुरमें छिपकर बैठ गये। वहाँसे उन्होंने घोषणा की कि कन्याका स्वयंवर हो चुका है। उसने अपने पिताके शत्रुको, यज्ञसभाके द्वारपालको वर चुना है। राजा अपनी प्रतिज्ञासे बद्ध है। बात लौटाई नहीं जा सकती। वैसा करना क्षत्रियधर्मके प्रतिकूल होगा। और फिर राठौर तो क्षत्रियोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं।

अन्तमें उन्होंने कन्याको गंगाके किनारे एक महलमें निर्वासित कर दिया। एक हज़ार दासियाँ पहरा देने लगीं। राजकन्या वन्दिनी होकर रहने लगी।

सब लोग जानते हैं कि किंग एडवर्डने मिसेज़ सिम्पसनके लिए समाज, सम्पत्ति और राजपाट छोड़कर स्वेच्छासे निर्वासन दण्ड स्वीकार किया था। अमानुल्लाहने रानीके लिए राजत्व छोड़कर राज्यको जलांजलि दे दी थी और विदेशी हो गये थे। किन्तु एक राजकन्या अपने प्रेमका प्रतिदान पायेगी भी या नहीं यह जाने विना केवल सम्पत्तिका त्याग ही नहीं स्वाधीनता तकका विसर्जन कर देती है, ऐसी घटना इतिहासमें शायद ही कहीं हो। कमसे कम मैंने नहीं देखी।

इधर पृथ्वीराजके कानोंमें यह समाचार पहुँचते ही उनका शिवेलरी बोध जाग उठा। उन्होंने तुरन्त समस्त सामन्तोंको बुलाकर परामर्श किया। कन्नौज जाकर स्वयंवृता वधूका उद्धार करना उचित है या नहीं, यह विचार करते-करते उन्होंने अकस्मात् कुछ व्यथा-सी बोध की। ऐसी व्यथा उन्हें पहिले कभी नहीं हुई थी। एक साहसिका तरुणीकी नीरव प्रीति वनके घने अन्धकारमें उन्हें अकस्मात् गुलाबकी सुरभि और सौन्दर्य दीख पड़ा। वे मनमें अनुभव करने लगे—

लग्गि वाण अनुराग उर, मन्मथ प्रेरि वसन्त।
सहै नृपति अप्पै न कहु खेदे हृदय असन्त।

किन्तु अभिन्नहृदय कवि चन्दने बाधा दी। उसने कहा कि यह महा-अशुभ होगा। किन्तु राजा फिर भी कन्नौज जाना ही चाहते थे। सब सामन्तोंने जानेके विपक्षमें मत दिया और सभा भंग कर चले गये। उसके बाद राजा शिकार खेलने गये, शिवमन्दिर गये और अनेक दिशाओंमें मन फेरनेकी अनेकों चेष्टाएँ कीं। किन्तु हाय! हृदय नहीं मानता था।

अन्तमें राजाने जब कविको फिरसे अपनी इच्छा जतलाई तो कविने कहा कि उनका वहाँ छद्म वेशमें जाना उचित हो सकता है। किन्तु पृथ्वीराज थे वीर। चोरकी तरह वे जा कैसे सकते थे? नहीं, वीरकी तरह जायँगे। उन्हें जिस बन्दिनी वधूने वरण किया है उसका उद्धार करनेके लिए क्या चोरकी तरह जाना होगा? कवि चुप होकर रह गये।

सामन्तोंने भी उन्हें रोका। दिनके बाद दिन बीतने लगे। जिससे पूछते थे वही मना कर देता था।

इधर राजकन्या बन्दिनी होकर दिन काट रही थी।

वर्ष भर बाद फिर वसन्त आया। राजाने फिर कन्नौज जानेकी बात चलाई। इस बार नये राजमंत्रीने कहा कि छद्मवेशमें नहीं किन्तु समयोचित वीरवेशमें कन्नौज जाना ठीक होगा। समस्त सेनाके साथ इस तरहसे जाना चाहिए कि यज्ञस्थलको तोड़-फोड़ कर राजकन्याका उद्धारकर ले आना सम्भव हो सके। एक अमार्त्यने बाधा दी कि ऐसा करना ठीक न होगा क्योंकि शहाबुद्दीन ग़ोरी हमला करनेकी ताक़में बैठा है।

चैत्र मासमें पृथ्वीराज ससैन्य कन्नौजकी ओर चल पड़े।

कनौजके निकट पहुँच कर उन्होंने सेनाको पीछे छोड़ दिया और चन्द कविके साथ एक धनी विदेशी युवकके वेशमें शहरमें पहुँच गये। जहाँ संयुक्ता नज़रबन्द थी वहाँ आत्मपरिचय देनेके पूर्व ही कन्नौजकी सेनाके साथ पृथ्वीराजकी सेनाका तुमुल युद्ध हो गया।

इधर संयुक्ताने पृथ्वीराजको झरोखेसे देख लिया। राजकुमारीके साथ उनका भी दृष्टि-विनिमय हुआ।

सुनि सुन्दरी वर वज्जन चल्ली।
थिन अलपह तलयह मुख वल्ली॥
देखि रंजि संयोगि सु भल्ली।
फूलि वाह मुख कुमुदह कल्ली॥

दोनों आकुल अवशचित्त हो गये।

राजकन्याने झरोखेसे जो छवि देखी उसे पृथ्वीराजकी छविसे मिलाकर देखा तो उसे इस बातमें कोई सन्देह न रह गया कि ये वे ही अदेख्य अपरिचित वर हैं जिनकी मूर्तिके गलेमें उसने माला डाली थी। देखते-देखते उसके मुखपद्मकी शोभा अपरूप हो खिल उठी।

ह्रिय कंद विकंप विपत्थ पथं, मनु मन्त विराजत कामरथं।
कल कंपित कंप कपोल शुभं, अलकावलि पानि उचन्त उचं।

लज्जासे पुलकायमान अरुणवर्णा राजकन्याने भगवान्को धन्यवाद देकर दासीको विदेशीकी ठीक तरहसे जाँच करनेके लिए भेजा। उसके बाद उन्होंने इच्छा प्रकाश की कि अभी गठबन्धन अर्थात् शुभकर्म सम्पन्न कर लिया जाय।

सखियोंने कहा कि जिससे पहिले ही मनका सौदा हो चुका है, और सबके सामने स्वयंवर भी हो चुका है उसके साथ फिरसे विवाह करनेका क्या प्रयोजन है? फिर भी क्षत्रिय आचारके अनुसार दोनोंका गान्धर्व मतसे विवाह हुआ। विवाहके बाद राजाने राजकन्यासे दिल्ली चलनेका कहा। इस प्रस्तावसे क्षणभरके लिए राजकन्या द्विविधामें पड़ गई। यह द्विविधा प्रत्येक कुमारीको विवाहके बाद स्वामीके घर जानेसे पहिले होती है। वन-बालिका, आश्रमपालिता शकुन्तला तकको स्वामीके यहाँ जानेसे पहिले ऐसी द्विविधा हुई थी। मन जाना चाहता है किन्तु चरण चलना नहीं चाहते।

इधर भोर वेलामें पृथ्वीराजके दलने आकर खबर दी कि अब देर

करनेसे काम नहीं चलेगा। बहुत विपत्तिका सामना है। पृथ्वीराजने देखा कि संयुक्ताको अत्यन्त कष्ट हो रहा है। मगर क्या उपाय है ? विवाह-रात्रिके बाद ही काल रात्रि आगई।

इन दोनोंके जीवनमें सुख बहुत थोड़े समय तक रहा। दिल्ली पहुँचनेसे लेकर शहाबुद्दीनग़ोरीके साथ युद्धके समय तकका जो थोड़ा समय उन्होंने सुख और शान्तिमें बिताया वह समय चिरकालसे नवदम्पतियोंका मधुर स्वप्न है। कवि चन्दने लिखा है कि संयुक्ता मानो समुद्र है और पृथ्वीराज मानो हंस होकर सुखके सप्तम स्वर्गमें विराज रहे हैं।

इधर जयचन्दकी सेनाके साथ घोर युद्ध हुआ। चन्दकवि रातको जहाँ ठहरे थे वहाँ ये दोनों पहुँच गये और दूसरे दिन भोरको दिल्ली जानेकी तैयारी की गई।

किन्तु अपने वीरत्वकी कीर्तिपर मुग्धा स्वयंवृता वधूको क्या राजा उद्धार करके चोरोंकी तरह ले जायेंगे।

अँग्रेज़ीमें कहा है कि "नन बट दि ब्रेव डिसर्वस दि फेयर" साहसीके अतिरिक्त सुन्दरी किसी अन्यके लोभकी वस्तु नहीं है।

इसीसे यात्राके समय पृथ्वीराजने कवि चंदको जयचन्दके पास भेजा। और यह कहला भेजा कि इस बार मैं तुम्हारी कन्याका विवाह करके दिल्ली लिये जा रहा हूँ।

चन्दकविने बाधा दी और कहा—तुम्हारी आशा पूर्ण हो गई। घर लौट चलो। शत्रुके घरमें यह ठीक नहीं।

किन्तु राजपूत राजनीति नहीं समझता।

पृथ्वीराजने ज़बरदस्ती चन्द कविको जयचन्दके पास भेजा। और कहला भेजा—मैं चोर नहीं हूँ। सिंहकी गुफ़ासे सिंहकी कन्याको ले जा रहा हूँ। यह जान लो। जिसमें साहस और शक्ति हो वह आकर बाधा दे।

चन्द कविने सभामें जाकर निवेदन किया—दिल्लीश्वरी महारानी संयुक्ता अपने स्वामीके साथ अपने घर जाना चाहती हैं। अपने पिताका आशीर्वाद चाहती हैं।

किधर जा सकती है। अपनी कन्याके स्वयंवरके कारण राजाकी व्यथाकी सीमा न थी। किन्तु उसे अल्पवयसी और अपनी कन्या समझकर किसी तरह सहन कर रहे थे। किन्तु यह तो व्यथाके ऊपर अपमान है। जलेपर नमक छिड़कना है। क्रोधमें भरकर राजाने समस्त सेनाको आज्ञा दी कि जैसे हो सके वैसे पृथ्वीराज और संयुक्ताको जीवित पकड़ लाओ।

संयुक्ताको अपने घोड़ेपर बैठाकर पृथ्वीराज वायुवेगसे अपनी सेनामें जा मिले। कन्नौजसे दिल्लीके मार्ग तक घोर युद्ध हुआ। इस युद्धमें जय-चन्दकी मुसलमान सेनाका बहुत बड़ा भाग था।

मुसलमान ? हाँ मुसलमान सेना और मुसलमान मीर अर्थात् अमीर भी।

'मत्त मीर जम सम सरीर जेइ नृप अग्गा रुक्के'

उन्होंने पृथ्वीराजको घेर लिया; उनके साथ भयंकर युद्ध हुआ।

राज रुक्थे अरी।
सिंह रोहं परी॥
खंजरं खोलियं।
वीर सा बोलियं॥

शहाबुद्दीन ग़ोरीके दिल्ली-विजयके बहुत पहिले हिन्दू राजाओंने तातार सेना और सेनापतियोंको अपनी सेनामें रखना प्रारम्भ कर दिया था। ये लोग अपने और विदेशी स्वधर्मियोंकी सुविधाके विचारसे हिन्दू राजाओंके बीचमें झगड़ा और विद्वेष प्रोत्साहित करनेमें सहायक होते थे। इसी सुविधासे लाभ उठाकर मुसलमान आक्रमणकारियोंको हिन्दुस्तानपर बार-

बार आक्रमण और लूटपाट करनेका साहस हुआ। किन्तु जो जागकर भी आँखें बन्द रखता है उसकी आँखें कौन खोल सकता है ?

पृथ्वीराज और संयुक्ता विजयी वेशमें दिल्ली पहुँचे। चन्द कविने यहाँ-पर एक और कथा लिखी है जिसका उल्लेख अन्य किसी पुस्तकमें नहीं है। किन्तु राजपूत चरित्रका एक महान् गुण शरणागतकी रक्षा करना है। इसके सुन्दर उदाहरणके हिसाबसे इस कथाका मूल्य है। शहाबुद्दीन ग़ोरी अपने एक पठान सरदारकी प्रेमिकापर मुग्ध हो गया। विपत्तिका अनुमान कर सरदार अपनी प्रेमिकाको लेकर पृथ्वीराजकी शरणमें आया। ग़ोरीने उसे लौटा देनेपर ज़ोर दिया। किन्तु शरणागतको विपत्तिके मुखमें छोड़ देनेके लिए पृथ्वीराज राज़ी नहीं हुए। फल यह हुआ कि ग़ोरीने कई बार हिन्दुस्तानपर आक्रमण किया। किन्तु प्रत्येक बार पृथ्वीराजने उसे हरा दिया। ग़ोरीके मनमें पराजयके अपमानके साथ प्रेमिकाको वापस न पानेकी वेदना भी मिली हुई थी।

ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैण्डकी रायल एशियाटिक सोसायटीके वाद-विवादोंसे यह प्रमाणित हो चुका है कि शहाबुद्दीन ग़ोरीने छठीं वार भारत-पर आक्रमणकर युद्ध जीता था। उसके पूर्व प्रायः प्रत्येक बार वह हारा था और दिल्लीके हिन्दू राजाने दो बार उसे बन्दी बना लिया था। किन्तु दोनों बार राय पिथौराने राजपूतोंके चरित्रगत उद्धत वीर धर्मके अहंकारमें उसे मुक्त कर दिया था।

सन् ११९९ में अन्तिम वारकी पराजयका वर्णन समसामयिक ऐति-हासिक मिनहास-उस-सिराज, तवाक़त-ए-नासिरीमें खूब अच्छी तरहसे दिया गया है। पृथ्वीराजके एक सेनापति गोविन्दरायके साथ द्वन्द्वयुद्धमें ग़ोरीने रायके मुखको घायल कर दिया था और उसके दो दाँत टूट गये थे। इधर रायकी तलवारके आघातसे ग़ोरीके हाथमें एक ऐसी असह्य चोट लगी थी कि वे घोड़ेपर लेट गये थे। निरुत्साह होकर मुसलमान सेना

भाग गई थी और टूटे बर्छे बाँधकर एक खटिया बनाकर मूर्छित ग़ोरीको रणक्षेत्रसे हटाकर उसकी जान बचाई गई थी।

अगले वर्ष ग़ोरी फिरसे विराट् सेना-वाहिनी सेना लेकर लौटा। उसकी एक लाख बीस हज़ार सेनाके साथ जम्मू और कन्नौजके हिन्दू राजाओंने भी साथ दिया था। (प्रमाण—तवाकत-ए-नासिरी और अकबर-नामा)। केवल यही नहीं। पृथ्वीराजका अपना एक सामन्त भी सुल्तानके दलसे जाकर मिल गया था।

पृथ्वीराजका साथ दिया था चित्तौड़के राणा (तबसे रावल कहलाते थे) समरसिंहने। शताब्दीके बाद शताब्दी तक मेवाड़ी वंश मुसलमानोंके विरुद्ध स्वाधीनताके लिए युद्ध करता रहा। पृथ्वीराजके बहनोई समरसिं (समरसिंह) वास्तवमें राजर्षि थे। वे अपने राज्यका शासन भगवान् महादेवके प्रतिनिधिके रूपमें करते थे। वे समस्त राजसी ऐश्वर्य छोड़कर, भोग-विलास तजकर स्थिर बुद्धि एवं अतुलनीय साहस और वीरत्वसे राज्य चलाते थे। उनके गलेमें केवल पद्मबीजोंकी माला शोभा पाती थी। उनके शीशपर शिवके समान जटा विराजती थी। उन्हें सबलोग योगीन्द्र कहकर पुकारते थे। पृथ्वीराजके साथ मिलकर कई युद्धोंमें जय प्राप्त करने पर उन्हें अपने प्राप्य हिसाबसे बहुत सम्पत्ति मिली थी। किन्तु उन्होंने वह सब अपनी सेनामें बाँट दी थी।

पवित्र कुरुक्षेत्रके तराइन गाँवमें तीन दिन तक युद्ध हुआ। महाभारतके कुरुक्षेत्र युद्धमें जिस तरह उत्तराने अभिमन्युको रणसज्जासे सज्जित किया था, इस कुरुक्षेत्रके युद्धमें संयुक्ताने भी अपने वीरपतिको उसी तरह सजाया। जिन हाथोंने पिताकी शत्रुताकी उपेक्षा कर स्वर्णप्रतिमाके गलेमें माला पहनाई थी, उन्हीं सुवर्णवर्ण करकमलोंने शत्रुका वध करनेके लिए स्वामीकी कमरमें तलवार बाँधी। बिदाकी वेलामें उसने कहा—तुम, चौहानसूर्य हो, तुमने इस जीवनमें यश और सुखका महाप्याला जिस भावसे पिया है अन्य किसीने नहीं पिया।

गीताकी शिक्षा मनमें याद कर संयुक्ता अपने स्वामीसे बोली—जीवन एक जीर्ण वस्त्र है। यदि इसे उतारकर फेंकना ही पड़े तो क्षति क्या हुई ? वीरोंकी दृष्टिमें मृत्यु ही अमरता है।

यह कहते-कहते संयुक्ताका हाथ स्वामीकी कमरवन्धपर पहुँच गया। उसकी फूलोंके समान अँगुलियाँ गैंडेके चमड़ेके वर्मपर अटककर रह गई। चन्द कविकी भाषामें—क्षुधार्त भिखारीको यदि मोहर मिल जाय तो जिस भावसे वह उसकी ओर ताकता है ठीक उसी तरह संयुक्ताके नेत्रोंकी दोनों पुतलियाँ चौहानके मुखचन्द्रकी ओर ताकती रह गई, अनिमेष, अपलक।

इधर घोर गर्जन करके युद्ध भेरी बज उठी। यह केवल युद्ध ही नहीं मृत्युका आह्वान भी था। संयुक्ताको समझनेमें भूल नहीं हुई कि इस वाद्यमें किसका आवाहन है।

पृथ्वीराज चले गये। सेनाके सम्मुख जाकर हाथीपर चढ़कर आगे बढ़े। समसामयिक ऐतिहासिक हसन निज़ामीने ताजूल मासिक पुस्तकमें लिखा है, "कौए ऐसा मुँहवाला हिन्दू राजा हाथीकी पीठपर बैठकर शंख बजाने लगा; ऐसा लगता था मानो नीले पहाड़के मुँहसे बहुत वेगसे लाल नदी बह रही हो।"

युद्धमें हिन्दू सेनापनि बंगाली वीर उदयराज भी आगे बढ़े। पृथ्वीराजने अतुल विक्रमसे युद्ध किया। चन्द कविकी भाषामें—

वज्रपात निरघात धरनि कै अंबर तुट्टिय।
दरिया दधि किय मथन मत्थि गिरिराज अहुट्टिय॥
उट्ठिराज पृथिराज बाग लग मनो वीर नट
कढ़त तेग मनो वेग लगत मनो बीज झट्ट घट
थकि रहे सूर कौतुक गगन रगन मगन भइ श्रोन घर
हदि हरषि वीर जग्गे हुलस हुरव रंगि नव रत्त वर।

किन्तु ग़ोरीके साथ था नलगोला (चन्द कविकी भाषामें) अर्थात् बन्दूक़ । युद्धका परिणाम बहुत कुछ इसीसे निश्चित हो गया था ।

इधर पृथ्वीराजको विदा कर देनेके पश्चात् संयुक्ताके सूखे नेत्रोंमें एक बूँद जल आ गया । मन ही मन उसने सोचा, अब मैं उन्हें सूर्यलोक ही में देख सकूँगी, योगिनीपुर (दिल्ली) में नहीं । उसने प्रतिज्ञा की कि स्वामीको देखे बिना वह केवल जल पीकर ही जीवन धारण करेगी । इस प्रतिज्ञाकी रक्षा उसने स्वामीकी पराजय, बन्दीदशा और हत्याकी खबर पानेके बाद चिताकी अग्निमें आत्मदान करने तक की ।

इस संसारमें केवल खराब भविष्यवाणियाँ ही सम्भवतः सत्य होती हैं। भली भविष्यवाणियाँ शायद फलना नहीं चाहतीं। योगिनीपुरमें राजकन्याका राजपुत्रके साथ मेल-मिलाप नहीं हुआ । किन्तु सूर्यलोकमें क्या हुआ ?

हसननिज़ामीने लिखा है—युद्धमें विजय पानेके बाद ग़ोरीने अजमेर क़ब्ज़ेमें कर मूर्तिपूजाके मन्दिरों और चित्रशालाओंको तोड़कर वहाँ मसजिदें और मकतब बनाये गये । अजमेरके रायको पहिले तो वह केवल बन्दी बनाकर ही रखना चाहता था किन्तु उसके शत्रुभावमें कमी न देखकर उसने पृथ्वीराजको क़त्ल करनेका हुक्म दे दिया । उस परित्यक्त हतभाग्यके शरीरसे सिर हीरेके समान चमचमाती तलवारसे अलगकर फेंक दिया गया । मिनहासके संक्षिप्त वर्णनके अनुसार पृथ्वीराजको 'दोज़खमें भेज दिया गया' ।

किन्तु चन्द कविने दूसरी कथा लिखी है । वे पृथ्वीराजके लँगोटिया मित्र अर्थात् जन्मकालके मित्र थे । उनकी बन्दीदशा कविसे सहन न हुई । उन्होंने अपनी आँखोंके सामने संयुक्ताका जौहरव्रत, अजमेरका पतन और बहुतसे असहाय अत्याचार होते देखे । वे भी पृथ्वीराजका अनुसरण कर गज़नी तक गये । वहाँ उन्होंने ग़ोरीको प्रसन्नकर पृथ्वीराजसे मिलनेकी सुविधा प्राप्त कर ली और पृथ्वीराजको शब्दबेधी बाण देकर ग़ोरीको मरवा

दिया। उसके बाद कटारसे एक दूसरेकी हत्याकर शत्रुके हाथोंसे छुटकारा पाया।

यह अंक ऐतिहासिक नहीं लगता क्योंकि फिर चन्द कविने हिन्दुस्तान लौटकर इस घटनाको नहीं लिखा। किन्तु काव्यकी दृष्टिसे इस प्रकारकी परिणति स्वाभाविक ही है।

सांसारिक सत्य ही तो एक मात्र सत्य नहीं है। उसके बाहर और ऊपर भी अनेक सत्य हैं, और उन अनेक सत्योंमें भी एक बड़ा तथ्य रहता है जिससे समस्त जीवनका अमृत सरस हो उठता है। उसी सत्यको अजमेर के राय पिथौराके जीवनमें संयुक्ता ले आई थी। उसी सत्य ही ने तो उनकी मृत्युको भी जीवन-माधुरीसे भर दिया था।

इसीसे इतिहासके निष्ठुर आलोकमें भी इस राजपुत्र और राजकन्याकी रूपकथा झलमलाती हुई शोभा पा रही है।

: ५ :

पुरानी प्रेमकी कविताओंके पृष्ठ उलट-पलट कर देखे। देवल देवीकी अमर प्रेमकी कहानी कलेजा फाड़ देनेवाली है। वे गुर्जर राजवंशकी परम रूपसी राजकन्या थीं।

सुलतान अलाउद्दीनके ज्येष्ठ पुत्र खिजरखाँके प्रति उनके प्रेम और प्रतिदानको लेकर अमीर खुसरोने अमर काव्य 'इश्क़िया'की रचना की है। शाहज़ादेने देवल रानीके प्रति अपने प्रेमके सम्बन्धमें अमीर खुसरोसे एक काव्य लिखनेका अनुरोध किया था। युवराजने अपने हृदयके आवेगको स्वयं ही बहुत अच्छी तरहसे लिख रखा था। कवि खुसरोने उसीको काव्य-छन्दमें ढालकर सजा दिया है।

शाहज़ादेकी आत्मप्रेम-कहानी पढ़ते-पढ़ते कविने देखा कि उसमें हिन्दीके शब्द अधिक हैं। हिन्दीका वह शैशवकाल था। फिर भी कविको यह स्वीकार करना पड़ा कि भावोंको व्यक्त करनेके लिए हिन्दी भाषा फ़ारसीसे निकृष्ट नहीं है। फ़ारसीमें शब्दोंका ऐश्वर्य अधिक नहीं है। यथेष्ट मात्रामें अरबी मिलाये बग़ैर काम नहीं चलता है। किन्तु कविके मतसे हिन्दी अरबीके समान ही पुष्ट भाषा है। उसका अपना व्याकरण अलंकार इत्यादि सभी कुछ है। उसने लिखा है कि इस हिन्दीके गुणगानसे उसके भाई-बिरादर आपत्ति करेंगे। किन्तु सत्य बातको स्वीकार करनेमें वे पीछे नहीं रह सकते। कविके मतसे जिसने गंगा और हिन्दुस्तान नहीं देखा है वह नील और टाइग्रिस नदीको लेकर अहंकार करेगा। जिसने बाग़में सिर्फ़ चीनका पपीहा देखा है वह यह कैसे जान सकता है कि हिन्दुस्तानकी बुलबुल क्या है?""जो खुरासानी प्रत्येक हिन्दूको मूर्ख समझता है वह पानका मूल्य भी घास-पातसे अधिक नहीं समझेगा।

""और यदि कोई पक्षपातपर ही उतारू हो गया है तो वह निश्चय ही हमारे (हिन्दुस्तानके) आमको (विदेशी) गूलरसे नीचे स्थान देगा।

""तुम्हें हिन्दुस्तानको स्वर्गस्थानके हिसाबसे देखना चाहिए।

एक हिन्दू राजकन्याके प्रेमने और मुसलमान कविकी क़लमने हिन्दीमें प्राण डाल दिये। अमीर खुसरोने हिन्दीमें भी कविता लिखी है और हिन्दी फ़ारसी मिलाकर जो नई उर्दू भाषा तैयार की गई उसका वृक्षारोपण भी ये ही कर गये थे। वे जानते थे कि एक मुसलमान साम्राज्यके सब स्थानोंमें यही भाषा चलेगी और काम-काज करनेमें सुविधा होगी। पृथिवीमें बहुत कम कवियोंने खुसरोके समान इतनी अधिक कविता लिखी है। काव्य-प्रतिभाके विचारसे उन्हें बुलबुले-हिन्द कहना चाहिए। उसके समान कविकी लेखनीसे गढ़ी हुई हिन्दीका ऐश्वर्य इतना बढ़ा कि उसे थोड़ा कहकर समाप्त नहीं किया जा सकता।

खुसरोने उस नई भाषाको इतना सहज सरल ढंग दिया कि उसके

कारण हिन्दी संस्कृत भाषाके अलंकार, रूपक, समास इन सब बन्धनोंसे मुक्ति पा गई। मनकी कथा मुखकी सहज भाषा द्वारा प्रकाश पाने लगी। हृदयके दर्दके बारेमें उन्होंने लिखा है—

सखी पियाको जो मैं न देखूँ
तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ।

मानो राजेन्द्र-नन्दिनी श्रीराधाका विरह हमारे गाँवके कोने की ग्राम किशोरीके बीच रूप पा गया हो।

कितने सहज सरल आवेगमें खुसरोने लिखा है—

गोरी सोवे सेजपर मुखपर डारे केश।
चल खुसरो घर आपने रैन भई चहुँ देश॥

अलाउद्दीनकी विजयवाहिनी आक्टोपसके बाहुओंके समान चारों ओर फैली पड़ी थी। देश जय करनेके नशेके साथ धनरत्न लूटनेका लोभ भी था। इसके पहिले एक बार सुलतानने इतनी अधिक लूटमारकी सामग्री पाई थी कि उसकी सेना धनरत्नके बोझके कारण एक मीलसे अधिक चल नहीं सकी थी। दक्षिण देशमें एक राज्य जय करनेपर अलाउद्दीनने इतना अधिक ऐश्वर्य पाया कि वह एक पहाड़से भी अधिक भारी था। कविने प्रार्थना करते हुए कहा है कि ऐसा भाग्यवान् राजा दिल्लीमें रहता है कि केवल उसकी आँखोंकी पुतलियोंके नाचने ही से मालावार देश और समुद्रोंकी लूट यहाँ आ जाती है।

मसनद पानेके कुछ दिन पहिले ही अलाउद्दीनने गुजरात और सोमनाथ जीतनेके लिए सेना भेजी। राजा करणके समस्त मणि-माणिक्य, स्त्री परिवार शत्रुओंके हाथोंमें पड़ गये। यह सब सुलतानको भेंट करनेके लिए भेज दिये गये। उनमें कमला देवी भी थी। उनके रूपपर मुग्ध होकर अलाउद्दीनने उन्हें अपने हरममें भेज दिया।

कमला देवीके दो पुत्रियाँ थीं। दोनों करणरायके साथ चली गई थीं।

किन्तु बड़ी कन्या मार्गमें ही मर गई। छोटी देवलदेवी पिताके साथ भाग कर बच गई।

इधर मातृस्नेहमें अन्धी कमलादेवीसे बग़ैर अपनी कन्याके दिन काटना कठिन हो गया। उन्होंने अलाउद्दीनसे कहा कि वे उसकी कन्याको उसके पास ले आवें। अलाउद्दीन तब कमलादेवीकी मुट्ठीमें थे। फिर उसपर ऐसा प्रस्ताव सुनकर किस पठानका मन नाच न उठेगा?

फिर विराट् सेना तैयार हुई। भयके मारे करणरायने अपनी पुत्री और संगी-साथियोंके साथ गुजरात छोड़ दिया और देवगिरि (दौलताबाद) के राय-रायान रामदेवके यहाँ आश्रय लिया। रायरायान् देवलदेवीके साथ विवाह करना चाहते थे। राजपूत राजाओंके लिए यह कोई नई बात भी न थी। किन्तु राजकन्याके निरापद आश्रय पानेके पहले ही पठान सेनाने हमला कर दिया। एक तीरके घावसे देवलदेवीका घोड़ा बेकार हो गया। वह पकड़ ली गई और दिल्लीमें अपनी माताके पास भेज दी गई।

इधर शाहज़ादा खिज़र दस वर्षके हो चुके थे। बालक देखनेमें बिलकुल कमलादेवीके भाईके समान था। मुसलमान इन दोनोंका विवाह कर देना चाहते थे। कमलादेवीको इसमें कोई आपत्ति न थी क्योंकि उनका मन भी खिज़रखाँकी ओर झुका था। दोनों बालक-बालिका एक साथ हँसते-खेलते बड़े होकर परस्पर प्यार करने लगे।

> दो गुलबन दरयके गुलशन शकरखन्द।
> बबूये यक दिगर अज़दूर खुर संद॥
> दो शमा शकर अफशाँ शबे अफरोज़।
> तर सोजे यक दिगर उत्फादह दर सोज़॥
> दो बे दिल रूबरू आवुर्दये मुश्ताक़।
> नज़रहा जुत्फ व दिलहा जुत्फ व तनताक़॥

दो गुलाब बाग़में सुखसे विकसित हुए। वे परस्पर सुरभित सुगन्धको सूँघकर प्रसन्नतासे भर उठे। दो शमा रातको चदोवेके नीचे जल उठे। वे दोनों साथ-साथ जल कर प्रकाश देने लगे। दोनों प्रेमी-प्रेमिका होकर परस्पर मिलनेके लिए उत्सुक हो उठे। और अन्तमें मिल गये। यद्यपि उनकी आँखें और अन्तर अलग थे किन्तु दोनों शरीर एक हो गये।

किन्तु हाय, प्रेमका मार्ग इतना सरल नहीं होता है।

खिज़रखाँकी माता इस विवाहके लिए राज़ी न थीं। वे चाहती थीं कि उनके भाईकी कन्याके साथ पुत्रका विवाह हो। भाई आलमखाँकी भी इच्छा इस शुभ कार्यको जल्दी करा देने की थी। इसमें एक तुर्कके साथ हिन्दूके विवाहकी ही बात न थी। आगे चल कर खिज़रखाँके सुलतान होनेकी बात थी।

अतएव राजनीति प्रेमके मार्गमें काँटा बन गई। उधर उन दोनोंको अलग कर देनेकी राय हुई और वे दोनों अलग-अलग घरोंमें रख दिये गये। किन्तु वे लुक-छिपकर मिलने-जुलने लगे। और उनके सखा व सखी उनकी गोपन प्रणयवार्ताको एक दूसरे तक पहुँचाने लगे। उनके प्रेमने अच्छी तरहसे जड़ पकड़ ली और वह धीरे-धीरे बढ़ने लगा।

सुलतानाने मामलेको ठीक करनेके लिए देवलको खिज़रकी आँखोंके सामनेसे बिलकुल हटा देना चाहा। उसने देवलको लालप्रासादमें सुलतान-के हरममें भेज दिया। यह खबर पाते ही खिज़रखाँकी दशा पागलोंके समान हो गई। उसने अपने कपड़े चीरचारकर फेंक दिये। उसमें दुःख सहने तककी शक्ति न रही। अन्तमें इस डरसे कि कहीं लड़का बिलकुल पागल न हो जाय सुलतानाने थोड़ी ढील कर दी। धीरे-धीरे शाहज़ादा प्रकृतिस्थ हुए और एक दिन छिपकर राजकन्यासे मिले। उस दिन भावोंके आवेगमें वे केवल आत्महारा ही नहीं—ज्ञानहारा भी हो गये। किन्तु सुल-तानाकी नज़र नहीं बदली।

इस बार हुक्म हुआ कि देवलको लालप्रासादके हरमसे भी जाना होगा। कोई आपत्ति या उज्र सुना नहीं जायगा। जानेके समय थोड़ी देरके लिए दोनों परस्पर देख-मिल सकेंगे। राजपुत्रने राजकन्याको अपने केशोंका गुच्छा स्मरणचिह्नमें दिया और उसे मिली चम्पक पुष्पके समान उँगलियोंकी अँगूठी।

मनको सँभालकर रखना।

संसारमें इससे बढ़कर और करुण विनती क्या हो सकती है?

हाय, राजपुत्रको इस संसारमें अपने मनका विवाह करने तककी स्वाधीनता नहीं है। राजगद्दी मिलेगी या मिलनेकी आशा होने पर भी मनके हिसाबसे काम नहीं चलता। त्रेतायुगके रामचन्द्रसे लेकर मध्ययुगके खिज़र-खाँ और इस शतकके ड्यूक आँव विंडसर तक।

मामा आलमखाँकी कन्याके साथ खिज़रखाँका विवाह हो गया। उस युगमें शाहज़ादे विवाहके उत्सवमें तमाशोंका सुन्दर वर्णन यहाँ मिलता है। विजयतोरण तो तैयार किया ही गया था। वह तो मामूली बात थी। नाच, गाना, दिवाली, भानमतीका खेल अत्यन्त अतुलनीय हुआ। रस्सेके खेल तमाशे हुए। पटेबाज़ीके करिश्मे दिखाये गये। जादूगर तलवारको पानीकी तरह गलेसे नीचे उतार लेते थे जैसे खूब मीठा शरबत पी रहे हों। छुरीको नाकके अन्दर तक पूरा डाल देते थे। लकड़ीके छोटे-छोटे पुतलोंसे बड़े पुतले निकलते थे। खिड़कीके अन्दरसे हाथी और ऊँट निकाले जाते थे। बहुरूपियोंने तरह-तरहके करिश्में दिखाये। वे कभी देवदूतके कभी राक्षसके रूप धरते थे और तरह-तरहकी आवाज़ें निकालते थे।

इस धूम-धड़ाकेके बीचमें शाहज़ादेका विवाह हो गया। इधर देवल अपने दिन कैसे काटे? उसने अनेक अनुयोग कर चिट्ठी लिखी किन्तु जो उत्तर मिला उससे उसकी असहायता किसी तरह दूर न हुई। दोनों दुःखसे व्याकुल होकर असहायभावसे परमात्मासे प्रार्थना करने लगे।

अन्तमें सुलतानाका मन पसीजा । उसे यह मालूम था कि मुसलमान शास्त्रमें चार विवाह किये जा सकते हैं । वे खिज़रके साथ देवलका विवाह कर देनेके लिए राज़ी हो गईं । अलाउद्दीन तो पहले ही से अपनी राय दे चुके थे । देवल लालप्रासादमें विवाहके लिए लाई गई । इस पर आनन्दित होकर कविने लिखा—

चू आँ खूनाबः क़तरा क़तरा दर जोश
चू दुरो लाल बा नो किरद दरगोश ॥
दिल अज़ याक़ूते गोशिश सुफ्तः तर गश्त ।
दो चश्मशे हम चू गोशिश पुर गहर गश्त ॥

बंकिमचन्द्रने कहा है कि बालाप्रणयमें अभिशाप है । इन दोनों निरीह दम्पतिके प्रेममें किसका अभिशाप था । इतना प्यार और विरह सहनेके बाद मिलन हुआ, किन्तु सुख नहीं मिला ।

सीमाहीन शारीरिक अत्याचार और उच्छृङ्खलताके कारण अलाउद्दीन-का स्वास्थ्य बहुत शीघ्रतासे गिरने लगा और मानसिक शक्ति भी नष्ट होने लगी । उसका प्रिय क्रीतदास मलिक काफूर राज्यका सर्वेसर्वा बन गया । खिज़रखाँ अपने पिताके अच्छे हो जानेकी मानता मानकर पैदल तीर्थ करने चले गये । इसी समय सुलतान थोड़ा ठीक हो गये और शाहज़ादेके पैरोंमें छाले पड़ गये । अनुचरोंने उन्हें समझा-बुझाकर घोड़ेपर चढ़ाया । इधर मलिक काफ़ूरने खूब रंग चढ़ाकर खराब भावसे इस अविवेचनाकी व्याख्या की । शाहज़ादेने सुलतानका अपमान किया है । सत्य बात तो यह है कि सुयोग्य पुत्र यह चाहता ही न था कि सुपिता निरोग्य हों ।

बस ।

सुलतानने अपने साले और पुत्रके ससुरसे सलाह-मशविरा करके पुत्रको एक निर्मम पत्र भेजा—हमारा दिया हुआ राजछत्र 'दरवाम' जयध्वज, हाथी-

घोड़े और जितनी भी खिलतें तुम्हें बख्शी गई हैं उन सबको इस पत्रको पढ़ते ही लौटा दो और जबतक दूसरा हुक्म न हो हमारे सामने हाज़िर तक मत होना। तुम गंगाके उस पार तराईमें निर्वासित किये जाते हो। वहाँ सिर्फ़ शिकार और जंगली जानवरोंमें रहो।

एक कछावर दूत इस फ़रमानको लेकर गया। भग्नहृदयसे और आँखोंमें जल भर कर शाहज़ादेने सब खिलत इत्यादि वापस कर दिये और गंगाके उस पार चले गये।

किन्तु अच्छा वक़्त आनेकी प्रतीक्षा न करके वह बिना हुक्मके ही मरणोन्मुख पिताके सामने पहुँच गया। पिताने मना किया किन्तु मलिक काफ़ूरके फन्देमें अन्धे होकर ठीक न होनेतक उन्होंने खिज़रखाँको ग्वालियर दुर्गमें बन्दीकर भेज दिया। उसकी माँ मलिका-ए-जहाँको लालप्रासादसे निकाल दिया गया। पिता पुत्रका यह विच्छेद इतना मर्मान्तक हुआ कि मानो एक आत्माके दो टुकड़े कर दिये गये हों। बेटेको सौंपते समय सुलताननने मलिक काफ़ूरसे शपथ ले ली थी कि किसी भी तरहसे शाहज़ादे की प्राणहानिकी चेष्टा नहीं की जायगी। इससे अधिक और कुछ करानेकी मानसिक शक्ति भी दिग्विजयी अलाउद्दीनमें बाक़ी नहीं रह गई थी। उसके पास "सिर्फ़ एक भारी हृदय और आहत आत्मा" थी।

अमीर खुसरोने सुलतानकी अवस्थाकी तसवीर खींचकर रख दी है। शाहंशाह "नीमजान या जान लुराम" अर्थात् वेदनासे भरे शरीरसे प्रायः अधमरे और "मादं नीम ए जान दरहम" अर्थात् दो टुकड़े किये हुए शरीरके समान हो गये थे।

और सैकड़ों ऐतिहासिक हत्याओंकी स्मृति और निराशाकी दीर्घश्वासों-से घिरे ग्वालियरके क़िलेमें देवल रानी अपनी इच्छासे अपने दुःखमय कारावासके संगी स्वामीको सान्त्वना देती हुई रहने लगी।

अलाउद्दीनके दिन निकट आ गये थे। उसकी मृत्युके बाद मलिक काफ़ूरने तुरन्त ही एक पाँच वर्षके सबसे छोटे शाहज़ादेको मसनदपर

बिठा दिया। साथ-ही-साथ ग्वालियरमें एक अनुचरको खिज़रखाँको अन्धा करनेके लिए भेज दिया। कारण यह था कि अलाउद्दीनके मरनेके बाद कुछ लोगोंने उसे सुलतान बनानेकी बात उठाई थी।

कविने अत्यन्त दुःखसे लिखा है—जिसकी आँखें सुरमेंके स्पर्शसे दुःख पाती थीं वे इस कष्टको कैसे सह सकेंगी। नर्गिस पुष्पके समान सुन्दर आँखोंसे ख़ून इस तरह निकला जैसे किसी मतवालेने शराब उलटी उडेल दी हो।

किन्तु अलाउद्दीनके कृतकर्मोंका प्रायश्चित्त अभी बाक़ी था। मनुष्यके रक्तका स्वाद पाकर बाघ दूसरे जानवरको मुँह नहीं लगाता है। मलिक काफ़ूरने एक और शाहज़ादेको अन्धा करनेके लिए अपने हज्जामको भेजा। इसके बाद जितने लड़के या वारिस थे उन सबको बन्दी करवा दिया और अन्तमें सबको मरवा डाला। अपने हाथोंकी कठपुतली एक नाबालिग़ शाहज़ादेको तख़्तपर बिठाया। अलाउद्दीनके समस्त ख़जाने, हीरे, जवाहरात पर कब्जा कर लिया और उसके समस्त क्रीतदासों तकको मरवा डाला। उसे भय था कि शायद इन्हींमेंसे कोई किसी दिन गद्दीको दख़ल न कर ले। शाहज़ादा कुतुबको एक अन्य स्थानमें क़ैदकर डाल दिया। और सुविधाके विचारसे उसके भाईके समान उसके भी दोनों नेत्र "जैसे चाक़ूसे खरबूजा काटा जाता है" समाप्त करा दिये।

काफ़ूरका भी थोड़े ही दिनों बाद ख़ून कर दिया गया और उसके प्रति ख़िज़रखाँका अभिशाप सफल हुआ। किन्तु इतने बड़े शत्रुकी हत्याकी ख़बर पाकर भी ख़िजरखाँने अत्यन्त दुःख प्रकट किया और रोया।

इसके बाद ख़िजरका एक छोटा भाई कुतुबुद्दीन अपने पिताके आमिलों और सहायकोंकी सहायतासे बादशाह बना। उसने सुखके स्रोतमें बहना शुरू कर दिया। उसने केवल साढ़े चार वर्ष राज्य किया। किन्तु उसने शराब पीनेके, गाना-बजाना सुननेके, चरित्रहीनताको बढ़ावा देनेके और कुप्रवृत्तियोंको चरितार्थ करनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं किया।

डेढ़ सौ वर्ष पूर्व इंग्लैण्डके इतिहासमें 'रिजेन्सी रेक्स' नामके एक दलने लक्का कबूतरकी तरह राजसिंहासनके चारों ओर जमकर तरह-तरह-के आमोद-आह्लाद किये थे और अपकीर्तिको बढ़ावा दिया था। इससे उनकी जो बदनामी हुई उसका अन्त न था। किन्तु उस समय दिल्लीके सुलतानके चारों ओर जो कुछ हो रहा था उसकी तुलनामें विलायती कर-तूतें अत्यन्त निरामिष व्यापार था।

लाल राजप्रासादमें सब लोगोंकी आँखोंके सामने दिन-रात सुलतान ढालते ही रहते थे। शराब और अन्य नशोंकी बिक्री तथा स्त्रियोंका बेचना-ख़रीदना खुलेआम होता था। सुन्दर नारियाँ दिखाई नहीं पड़ती थीं। एक किशोर बालक या सुन्दर खोजा या रूपसी किशोरी पाँच सौ, एक हज़ार या दो हज़ार टंकोंमें बिकने लगी थीं।

इस समयके केवल तीन सौ वर्ष पूर्व सन् १००० ई०में, अर्थात् इस देशमें जब मुसलमानोंका आक्रमण शुरू हुआ था, तब ग़ज़नीके सुल्तानके सभापण्डित अल्बेरुनी (यदि इन्हें विदेशी मान लिया जाय तो इनसे बढ़कर उस समय इस देशको समझने और जाननेकी किसी स्वदेशी व्यक्तिने चेष्टा नहीं की) ने देखा था कि हिन्दू लड़कियाँ ख़ूब शिक्षित होती थीं। वे खेलती, नाचती और छवि अंकन करती थीं। सब प्रकारके सर्वजनीन कार्योंमें भाग लेती थीं। सन् १२०० ई० में मुहम्मद ग़ोरीने इस देशमें राज्य स्थापित कर लिया था। इसके बाद सौ वर्षोंमें ही दिल्लीके सुलतान की नाकके सामने अर्थात् जहाँ लोग सुशासनकी आशा करते थे, वहाँ लोगोंका जीवन इस निम्नकोटिका हो गया था। सारा शहर ही दौलत-खाना-ए-जुलूसमें परिणत हो गया था। बोतलवाहिनीसे प्रारम्भ कर सब प्रकारके पंच मकार और अस्वाभाविक अपकर्म तक लोगोंके लिए स्वाभाविक हो गये थे।

इस तरहका वातावरण हो गया था कि निर्लज्ज निष्ठुर कुतुबने अपने

दादाको हुक्म दिया कि पत्र पढ़ते ही तुरन्त देवल देवीको हमारे हरममें भेज दो।

खिजरखाँ, अन्धे असहाय खिजरखाँको इस संकटकालमें जो कुछ समझमें आया, वह उसे पहिले ही समझ लेना चाहिए था। अन्धी दृष्टिसे मस्तक ऊँचा कर मनमें दुनियाका सब जहर और साहस भरकर वह बोला—

इतने दिनोंतक मेरी प्रेयसी मेरे ही साथ रही है। मेरा सिर ही चाहे क्यों न काट डाला जाय, मैं उसे नहीं दूँगा।

और देवल देवी? उसका जो उत्तर था उसे विना लिखे हुए ही पुराकालसे आज तककी समस्त हिन्दू नारियाँ अपने मनमें जानती हैं।

कुतुबुद्दीनने अन्धे दादा और असहाय भाभीको सतानेमें देर न की। उसको मार डालनेके एक षड्यन्त्रके व्यर्थ हो जानेपर उसने सोचा कि इस बार सिंहासनके किसी भी दावेदारको जीवित रखना ठीक नहीं है। यद्यपि इस षड्यन्त्रमें उसके बन्दी और अन्धे भाईका कोई भी हाथ न था, तव भी विपत्तिकी जड़को समाप्त कर देना ही ठीक है। उसने अपने देहरक्षक सरदारको भाईकी हत्या करनेके लिए ग्वालियर भेजा।

घातक बन्दीघरमें घुसा। अन्धेका अन्तिम सहारा उसकी प्रणयिनी थी। किशोरमें पत्नी और बन्दी दशामें संगिनी देवल देवीने दोनों हाथोंसे स्वामीको घेरकर पकड़ लिया। मैं तुम्हें गिरने न दूँगी, तुम अवल असहाय, मेरे हो, इन दोनों हाथोंसे मैं तुम्हारी सव विपत्तियोंसे रक्षा करूँगी। देखो मेरे इन दोनों हाथोंसे वढ़कर कौन-सी ढाल तुम्हारी रक्षा कर सकती है।

देवल देवीके वे सुन्दर बाहु घातककी तलवारके वारसे स्वामीके शरीरसे विच्छिन्न होकर भूमिपर गिर पड़े। जो हाथ स्वामीको छोड़कर किसीके न हुए वे उसीकी रक्षामें काम आ गये।

किन्तु अभी और रक्त गिरना बाक़ी था। कुतुबुद्दीन अपनी चरित्र-हीनताकी सीमा तक पहुँच चुका था। उसने एक नीचवंशके नीच क्रीतदास-को सब अधिकार दे दिये थे। उसी प्रियपात्र खुसरूखाँने अन्तमें कुतुबुद्दीन-

की एक रात्रिमें गुप्तहत्या कर दी और दिल्लीके सिंहासनपर कब्ज़ा कर लिया।

ऐतिहासिक फ़रिश्ताके मतसे खिजरखाँकी हत्या कराकर कुतुबुद्दीन देवल देवीको ज़बरदस्ती अपने हरममें ले आया था और इसके बाद गुप्त घातक खुसरूखाँने भी उसपर कब्ज़ा किया था। ऐतिहासिक बेरुनी इस सम्बन्धमें नीरव हैं। मन ही मन प्रार्थना करता हूँ कि इसका नारीत्व इस तरह तिल-तिल करके अधम मृत्युको न प्राप्त हुआ हो।

किन्तु अमर प्रेम ?

जिस प्रेमकी गाथा कवियोंने युगों-युगोंसे गाई है, जिसकी महिमा देती है आशा, देती है भाषा, और देती है सान्त्वना। क्या उस प्रेमका अन्तिम परिणाम ऐसा हो सकता है ?

खिजरखाँकी हत्याके बाद उसकी आत्मा मानो देवल देवीके साथ-साथ डोलती रही। इस लोकमें जो इतने दुःख-दुर्दशामें उसके साथ रही, उसे मृत्युकी यवनिका अलग कैसे कर सकती है। इसीलिए उसने देवल देवीसे कहा :—

कि ए जानेमन व आशोंवे जानम।
कि दरकारे तू शुद जानो जहानम॥
चू मन वे हरत ज़ जाँ कर दम जुदाई।
मुबरीं ज़े अशनाइयाँ आशनाई॥

हे मेरे प्राण ! तेरे ही लिए मैंने जीवन और जगत्‌का विसर्जन किया है। केवल तेरे लिए ही मुझे यह वियोग सहना पड़ा है। इसलिए हे मेरे प्यार ! मेरे प्यारसे मुक्त न होना।

विश्वासको छोड़कर प्रेमका और कोई सम्बल नहीं है।

: ६ :

पहिले प्रेम या विवाह, इस विषयपर किशोरावस्थामें कई वार तुमुल तर्क हो चुका था।

किन्तु प्रेम या विवाह दोनों ही अपने हाथकी मुट्ठीमें बन्द तो नहीं रहते। विवाहसे बढ़कर और वस्तु क्या हो सकती है इस सम्वन्धमें तव तक कोई पक्की धारणा मनमें नहीं आई थी। इससे खूब निरापद होकर तर्क करता था। निश्चिन्त मनसे अड्डेपर जमकर न जाने कितना समय काटा होगा और गलीके मोड़का नीलकण्ठ केबिन दोनों हाथ उठाकर विवाह और प्रेम दोनोंको ही आशीर्वाद देता होगा।

मगर यह तो बताइए कि ऐसे गरमागरम विषयकी आलोचना पड़ोसके पार्कमें बैठकर की कैसे जायगी ? वहाँ बड़े बूढ़े हैं। ऐसी वातें सुनते ही दादा नाना श्रेणीके लोगोंके कान चौकन्ने हो उठनेका भय है। इसके वाद न जाने घर लौटनेमें कितनी देरी लग जाय और सबसे बढ़कर असुविधा तो सालाना परीक्षामें किस विषयमें कितने नम्वरोंका जुगाड़ करना होगा इसकी है। इससे नीलकण्ठकी केबिन ही ठीक है।

अब देखता हूँ कि बैठकखाना तो बदल गया है किन्तु बैठक नहीं बदली है। कहाँ उत्तर कलकत्तेकी एक गली और कहाँ उदयपुरके महाराणाकी सहेलियोंकी वाड़ी। यह अपने यहाँके साधारण गृहस्थोंके घर नहीं हैं रजवाड़ेमें बाड़ी होती है बगीचानुमा मकान। सखियोंके वगीचेनुमा घर।

रोमांसकी गन्ध पाते ही मन नाच उठा। यहाँ महाराणा अवश्य ही रासलीला करते होंगे। वह भी किस युगमें ? किस लड़ाईमें तलवारकी झन्-झन् आवाज़के साथ सैकड़ों सखियोंके नूपुर झनझना उठते होंगे ? वर्षाकी

फ़ुहारोंकी जगह फुलझड़ियाँ छूटती होंगी ? रक्तकी जगह लाल अबीर कुम-कुम गिरता होगा ?

मनके आवेगमें राजस्थानके चन्द कविका स्मरण हो आया।

बिगसि कमल मृग भ्रमर बैन खंजन मृग लुट्टिय।
हीर कीर अरु बिंब भीति नख सिख अहि घुट्टिय॥

मेवाड़ी महोदयोंने मुसकराकर एक साथ सिर ऊँचे कर लिये। नहीं, वे अत्यन्त सच्चरित्र लोग थे। दूसरे कई देसी राज्योंके मुकावलेमें इनके आचार-विचार और रीति-चरित्र बहुत अधिक ऊँचे थे। वे विवाह केवल वंशरक्षाके लिए ही नहीं वंश-वृद्धिके लिए भी करते थे। कारण यह कि प्रत्येक युद्धके बाद देखा यह जाता था कि वंशकी बत्ती जलानेवालोंका अभाव हो गया है। इसीसे वहु-विवाहका भी रिवाज़ था। किसी और नारी या अन्यान्य पंच मकारोंमें वे कभी नहीं रहे। थोड़ी बहुत ढाल ली या हल्का आमोद-प्रमोद इस उदयपुरमें कभी किसीने कर भी लिया तो वह रजवाड़ोंके दरवारकी तुलनामें अत्यन्त निरामिष कारबार है।

दिल्ली दरबारकी कहानियाँ भूली नहीं थीं। इसीसे पूछ वैठा—आप लोगोंने कभी प्रेम भी नहीं किया क्या ?

शिकार पार्टीसे लौटते समय महुवा पेड़के नीचे वैठकर एक बार एक हिज़ हाइनेसने वहुत ऊँचे गलेसे राजपूतोंके प्रेम करनेको अस्वीकार कर दिया।

वे वोले—हम लोग कम उम्रमें ही विवाह कर लेते हैं। और यह भी जानते हैं कि एक अंगरेज़ी कविने लिखा है कि विवाह प्रेमकी समाधि होती हैं। विवाह होते ही समस्त रोमांस हौआ हो जाता है।

वाधा देता हुआ मैं वोला—अर्थात् आपके जीवनमें कभी भी दक्षिणकी हवा नहीं वही यह कहना चाहते हैं न ?

अरे राम कहो ! हम लोगोंको तो पठान अलाउद्दीनके समयसे दिल्लीकी

हवाने ही काफ़ी मतवाला कर रखा है। दक्षिणी हवामें झूम उठनेका समय ही हमें कहाँ मिला?

यह तो ठीक है। दिल्लीकी जिस हवाने उदयपुरको सब समय झुलाये रखा वह होली खेलनेके समयकी हिन्दोला हवा नहीं थी। पठान मुग़ल चढ़ाई करके लड़ते थे। इधरसे तलवारका जवाब तलवारसे मिलता था। मेवाड़ने कभी भी दिल्लीको मोहर या कन्या नज़र नहीं की। किन्तु इस बार जब सम्मिलित स्वाधीन भारतमें गणतन्त्रकी स्थापना हुई तो उदयपुरकी कौन कहे समस्त देशके किसी भी राजाने चूँ तक नहीं की। विना युद्ध लड़ाई-झगड़ेके ही सब राजाओंके सिरके मुकुट खिसक गये।

अब महाराणा केवल महाराज प्रमुख हैं।

महाराज प्रमुखके सेक्रेटरी रामगोपालजी विद्वान् और बुद्धिमान् व्यक्ति हैं। बंगला साहित्यमें उनकी खूब अभिरुचि है। उन्होंने यह भी कहा कि—ज़रा सोचकर देखिए तो एक बार मुग़लोंके हरमकी कथा। बंकिमचन्द्रके राजसिंहमें तो पढ़ा ही होगा कि शाहज़ादियाँ प्रेम नहीं करती थीं।

—किन्तु वे विवाह भी तो नहीं करती थीं।

इतनी जल्दी स्पष्ट उत्तर पानेकी उन्हें आशा न थी। प्रतिवाद कर बोले—क्यों? उनमें-से कइयोंने तो विवाह किये थे?

मैंने उत्तर दिया—जो शाहज़ादीके समान शाहज़ादी थीं वे विवाह नहीं करती थीं, प्रेम करती थीं। उनमें जब तक प्रेम करनेकी साध रहती थी तब तक वे विवाह नहीं करती थीं। और जो शाही मिज़ाज के बादशाह होते थे वे विवाह भी करते थे और प्रेम भी करते थे। विवाह नामक सांसारिक अपकार्यसे अलग बचकर चला जाय या भविष्यमें इसे करना होगा या नहीं, इन सब असुविधाजनक बातोंको वे भूल जाते थे।

जनरल मनोहरसिंहने खरी मेवाड़ी तलवारके समान झकमकाता प्रतिवाद किया। हमारे पूर्व पुरुषोंने हल्दीघाटीके युद्धमें शरीरका रक्त बहाया

था। पुरुषानुक्रमसे इसी तरह देशके लिए हम लोग सिर आगे बढ़ाते रहे हैं। आज सहेलीकी वाड़ीके स्निग्ध सजाये हुए कुन्जोंमें लड़ाई नहीं होती है। किन्तु यह कह देनेसे बेदला जागीरके चौहान राव क्या कथा-वार्ता करनेमें भी पीछे हटेंगे ?

आज देशकी कांग्रेसी सरकारने राजवाड़ेकी सब जागीरें ज़ब्त कर दी हैं और ऐतिहासिक जागीरदार, सामन्त इत्यादि राहके भिखारी बन गये हैं। लोग यहाँ तक कहने लगे हैं कि कुछ जागीरदार अपनी ज़मीन खो जानेपर छिपे तौरपर डाका लूटमार इत्यादिका काम करने लगे हैं। किन्तु सारे देशमें जो विराट् उथल-पुथल हो गई है इसका धक्का तो हर कोनेमें पहुँचेगा ही। राजवाड़ेमें भी वही हुआ। जो लोग जान देना जानते हैं वे केवल पेटके लिए डकैती करेंगे, यह क्या बात हुई ?

ऐसे जागीरदारोंमें महाकुलीन बेदलाके राव साहबने भी हार क़बूल नहीं की। धीरेसे उन्होंने कहा—मैं इस बातको नहीं मानता। शाहज़ादियाँ न विवाह करती थीं न प्रेम। ऐसा कच्चा काम करनेवाली चिड़िया वे न थीं। और बादशाह प्रेम भी करते थे और विवाह भी। प्रेम विवाहको अपकार्य समझनेकी छोटी नज़र उनकी नहीं थी।

ठाकुर साहब बोल पड़े—अगर उनका कलेजा इतना छोटा होता तो हमारे साथ लड़ाई लड़नेकी हिम्मत उनमें कैसे होती ?

उन्होंने यह ऐसे ढंगसे कहा कि उनके साफेका पीछेका भाग नाचने लगा। ऐसा लगा मानो वह इनके कथनकी सत्यताको प्रमाणित करनेके लिए इन दोनों मधुर अपकर्मोंमें-से एक या ज़रूरत होनेपर दोनों भी करनेके लिए तैयार हैं।

हमलोग जब साग-पात खाकर अपने मनोंमें प्रेमके सपने देखते हैं तो जो जीवन भर मुग़लाई खानोंसे पेट भरती हैं ऐसी शाहज़ादियाँ प्रेम क्यों न करेंगी।

उनका विवाह करनेमें वास्तवमें बड़ी कठिनाई होती थी। कुलीनकी कन्याके साथ विवाह सम्बन्धकी असुविधा तो थी ही। उसके ऊपर भी प्रेम और राजनीति मिलकर विवाहके पथमें काँटे बिछा देते थे। मसनदके लिए शाहज़ादों-शाहज़ादोंमें हमेशा ही लड़ाई होती रहती थी। उसपर भी यदि कहीं दामाद भी दावेदार हो गया तब स्थिति और भी कठिन हो जाती थी। इसीसे सुलतानकी कन्याके साथ विवाहके लिए कई पिताओंमें उत्साह नहीं रहता था।

मसनद नहीं, मरनेकी सनद।

ब्रिटिश म्यूज़ियममें बड़े यत्नसे रखी हुई एक पाण्डुलिपि रुकाइयत्-आलमगीरीमें एक अत्यन्त चमत्कारपूर्ण फारसी कविता है—

मगर बा दामादिये अरूसए मुल्क ना साज़द।
कि बोसये बर् लबे शमशेरे आबदार ज़ानद॥

धारवाली तलवारकी धारका चुम्बन किये बिना राजवधू किसीको हृदय नहीं देती।

इसलिए शाहज़ादे भी नज़र पक्की रखते थे। जब-तब उनकी मति-गतिपर जाँच-पड़ताल होती रहती थी। किसी तरहकी आपत्ति करनेपर उनका चालान तुरन्त ही सूबए-दखन या उससे भी मुश्किल सूबा काबुल कर दिया जाता था। इसमें केवल निर्वासन ही नहीं होता था, बेकार राजधानीमें बैठे रहनेका भय भी होता था। शाहज़ादोंके मसनदकी आशा और बादशाहकी आयुके बारेमें कोई बात नहीं हो सकती थी।

इस सम्बन्धमें एक कहानी है जिससे इस बातकी जटिलता समझमें आ जायगी। मुग़ल दरबारकी कहानी है, किन्तु इस महत् दृष्टान्तकी राजस्थानमें भी कहीं-कहीं नक़ल की गई है।

औरंगज़ेबकी अधिक दिनों तक ज़िन्दा रहनेकी और साम्राज्य प्रशासनकी क्षमताका उपभोग करनेकी साध असीम थी। इसीसे वह अपने

वृद्ध पिताके मरने तक उसके निकट नहीं गया। किन्तु हाथोंहाथ कर्मफल मिल जानेका भय भी उसके मनमें समाया रहता था। वृद्ध हो जाने पर भी वह अक्षम नहीं हुआ है और उसकी मज्जामें युद्ध करनेकी इच्छा सजग है इसे दिखानेके लिए उसने कौन-सा छल-कपट नहीं किया। वह सदा अपनी सेनाके साथ तांजाम पर बैठकर चलता था। तलवार खोल-कर दाहिने-बायें चलाता रहता था मानो हवाके टुकड़े-टुकड़े कर रहा हो। उसके मुखपर आत्मप्रसादकी हँसी खेला करती थी। तीर-धनुषके साथ भी वही अभिनय होता था। सारी दुनिया देख ले, मैं विश्वविजयी आलम-गीर अस्सी वर्षका होकर भी शक्त समर्थ सम्राट् हूँ।

ऐसे औरंगजेबने अपने बेटोंसे एक दिन पूछा, तुममेंसे कौन सम्राट् होना चाहता है? कौन नहीं होना चाहता था।

शाहआलमने सविनय उत्तर दिया—जहाँपनाह, यदि आप कहीं विश्राम सुख भोग करनेके लिए रिटायर होना चाहते हैं तो तख्तताऊस मुझे ही मिलना चाहिए। यों भी समस्त सद्गुणोंके अधिकारी ज्येष्ठ पुत्रको ही राजा होना उचित भी है। फिर भी जहाँपनाह; जब तक आप ईश्वरकी कृपासे हम लोगोंके बीच मौजूद हैं तक तक शाहज़ादोंको चुपचाप ही रहना चाहिए।

आज़मने निवेदन किया—मैं तो तख्तपर बैठनेके लिए ही पैदा हुआ हूँ। क्योंकि मेरे माता-पिता दोनों ही मुसलमान और राजवंशके व्यक्ति हैं।

अकबरने उत्तर दिया—मेरा जन्म तो बड़ी शुभ लग्नमें हुआ था। मेरे पैदा होते ही पितृदेवका भाग्य खुल गया था। मेरे पैदा होते ही उन्होंने अमुक-अमुक युद्ध जीते थे—इत्यादि। इसके बाद भी क्या और किसीका हक तख्तपर हो सकता है?

कामबख्श एक क़दम और आगे बढ़ गये। मुग़ल साम्राज्य तो निः-संदेह उन्हींका होना उचित है। वे सम्राट्के पुत्र हैं। और सब भाई तो

शाहज़ादेके पुत्र होकर जन्मे हैं । इतना कहकर आकाशकी ओर नेत्र उठाकर कामबख्श बोला—

अल्लाहकी इच्छा अवश्य पूर्ण होगी ।

इन सब उत्तरोंको सुनकर औरंगज़ेवने मनमें क्या सोचा यह कोई न जान सका । उन्हें केवल इतना पता लगा कि अभी उनका चांस आनेमें बहुत देरी है । ज्योतिषियोंने बतला दिया था कि बादशाह आलमगीर एक सौ बीस वर्ष राज्य करेंगे । इसलिए उनकी सब बातें बेकार हैं । यह कहकर उसने तिरछी दृष्टिसे अपने पुत्रोंकी ओर उनके मुख परके उभरे भावोंको जाननेकी दृष्टिसे देखा या शायद कोई इस बातको सुनकर किसी तरहका जवाब देना चाहता हो ।

बेचारोंकी कितनी आशाएँ भंग हो गईं । यह बोझ कब दूर होगा । बापकी मृत्यु तक कैसे इन्तज़ार किया जाय । अकबरने बापकी ज़िन्दगीमें ही विद्रोह कर दिया और अपनेको सम्राट् घोषित कर दिया । राजपूतोंने उसकी सहायता की थी । सुचतुर औरंगज़ेवने जाली पत्र भेजकर उसका राजपूतोंके प्रति यदि विश्वास नष्ट न करा दिया होता तो विद्रोहका फल क्या होता कौन जानता है ? और बादशाहकी मृत्युके साथ-साथ प्रत्येक भाईने लड़ाई शुरू कर दी ।

किन्तु उस प्रश्नका और आगे उत्तर देनेकी अपेक्षा सब चुप रहे । उनकी आँखोंके सामने यह घूम गया कि उनके एक भाई शाहज़ादा मुहम्मदको किस तरह बन्दी रखकर और ज़हर देकर उसके स्नेहशील पिताने मरवा डाला था ।

राजाके पुत्र होनेमें इतनी विपत्ति तक पड़ सकती है । उसपर यदि कहीं दामाद आ गया तो विपत्ति और भी बढ़ जाती है ।

एशियामें राजाके किसी दासी इत्यादिके साथ प्रेम करनेमें अन्य पक्षको बड़ी विपत्ति रहती थी । इस प्रेमको पूर्व और पश्चिमके लोगोंने कभी भी एक दृष्टिसे नहीं देखा । फ्रांसमें लोग प्रेममें पड़ते हैं मज़ा देखनेके

लिए, हँसी-मसखरी करनेके लिए और उसके बाद भूल जाते हैं। किन्तु मिश्रसे मंगोलिया तक हरमके प्रेमके साथ हाहाकार और दीर्घनिःश्वास निकलता रहता है।

शाहजहाँके समयके मुग़ल दरबारकी बात देखी जा सकती है। राजवाड़ेकी कहानीको दिल्ली ले गये बग़ैर और कोई उपाय ही नहीं है। दिल्लीके हरमकी घटनाएँ बहुत-से लेखोंमें मिल जाती हैं किन्तु राजपूतानेके ज़नानेकी ख़बर कहीं नहीं मिलती। युवराज दारा राज्यका अधिकांश काम सम्हालनेके बाद अपनी असीम क्षमताशाली बहिन जहानाराका विवाह कर देनेके लिए राज़ी हो गये—कमसे कम ऐसा ही भरोसा उन्होंने बहिनको दिया। इसलिए बहिनने भी उन्हें सिंहासन प्राप्त करानेके लिए जी-जानसे चेष्टा की। किन्तु पहिले नौ मन घी तो हो ले तब राधाको नाचनेकी फ़ुरसत मिलेगी।

किन्तु तब तक क्या राधा पैरोंमें मेंहदी लगाये बैठी रहेंगी ?

नहीं, शाहज़ादियाँ इस तरहके दुःखका जीवन काटनेके लिए पैदा नहीं होती थीं। हरममें बन्दिनी अवश्य थीं। किन्तु ऊँची प्राचीरोंसे घिरी जगहमें सुखका नन्दनकानन सजानेमें कौन-सी बाधा थी? फ़रासीसी भ्रमणकारी और शाहजहाँको अच्छा कर देनेवाले डाक्टर बर्नियरने दो घटनाओंकी कथा लिख छोड़ी है। ये दोनों सच्ची घटनाएँ हैं, रोमांस बनानेके लिए मनगढ़न्त कहानियाँ नहीं—यह वे विशेषरूपसे लिख भी गये हैं।

कुछ दिनों बाद एक साधारण घरका सुन्दर युवक लुक-छिपकर जहाँनाराके पास पहुँचनेकी चेष्टा करने लगा। बड़ा कठिन काम था। चारों ओर कड़े और जटिल स्वभावकी नारियोंका दल था जिनका स्वयंका यौवन व्यर्थ होकर मरुभूमि रह गया था। ये सब जहाँनाराकी असीम क्षमता और पिताके ऊपर प्रभावके कारण उससे जलती थीं। ऐसा कैसे हो सकता था कि उनकी आँखोंके सामने एकके ऊपर वसन्तकी हवा बहे

और सब उत्तरी हवाकी हिमानी शीतमें ठिठुरें ? समय रहते ही शाहजहाँ-के कानोंमें ख़बर पहुँचा दी गई।

रातके समयमें कन्याके शयन-कक्षमें शाहजहाँके जानेकी क्या ज़रूरत? किन्तु सम्राट्को रोक भी कौन सकता है ? पास ही छिपनेकी एक जगह थी। वहीं उस युवकको चटपट छिपा दिया गया। पिता भी चतुर और राजनीतिमें पक्के उस्ताद थे।। उन्होंने कन्याके साथ तरह-तरहकी वात-चीतें करनी शुरू कर दीं। उनके मुखपर न क्रोधका कोई चिह्न था और न आश्चर्यका कोई आभास। वातों ही वातोंमें उन्होंने दुःख प्रकट करते हुए कहा कि शाहज़ादीके शरीरका सोनेका सारंग कुछ मैला-सा हो गया है। शायद आजकल वह ठीक तरहसे गुस्ल नहीं करती हैं। पिताके प्राण, कन्याके स्वास्थ्यके लिए भयानक रूपसे व्याकुल हो उठे। अभी कन्याको ठीक तरहसे गुस्ल करना चाहिए। उन्होंने खोजाओंको वुलवा कर तुरन्त ही हमामके लिए गरम जल तैयार करानेकी आज्ञा दी। जिस जगह पानी गरम करनेके लिए आग जलाई गई वहीं युवक छिपा वैठा था। शाहंशाह वहाँ वैठे-वैठे कन्याके साथ ख़ुश-मिज़ाजीसे उस वक़्त तक वात-चीत करते रहे जब तक उसके प्रेमकी समाधि न वन गई।

कुछ दिनों वाद एक और प्रेमका फूल खिला। नाज़िरख़ाँ नामके एक सुन्दर और बुद्धिमान् ईरानी उमरावको जहाँनाराने अपना खानसामा नियुक्त किया। प्रेमके साथ उच्चाकांक्षा थी और शाहज़ादीके कृपापात्र होनेके साथ दरवारका स्नेह भी उसे मिला था। वादशाहके सम्वन्धसे जातिभाई और प्रधान सेनापतिने प्रस्ताव किया कि वेग़म साहिवा अर्थात् प्रधान राजकुमारीका विवाह नाज़िरख़ाँके साथ वुरा नहीं होगा। इधर इन दोनोंके गोपन प्रेम सम्वन्धके वारेमें शाहजहाँको पहिले हीसे कुछ सन्देह हो चला था। ऐसी हालतमें क्या करना ठीक होगा, इसे तय करते शाहजहाँको देरी नहीं लगी। एक दिन भरे दरवारमें सवके सामने उन्होंने उस ईरानी उमरावपर विशेष अनुग्रह करके पानका वीड़ा उपहारमें दिया।

दरबारी अदब क़ायदेके अनुसार उस बीड़ेके मिलनेके साथ बिना किसी शकके नाज़िरखाँको कोर्निश करके खा लेना था। लाल ओठोंके साथ समस्त मुखमें ख़ुशबूका अनुभवकर भविष्यके रंगीन स्वप्नोंको देखते-देखते तांजामपर बैठकर प्रेमिक अपने घर वापस लौट गया। किन्तु उसके प्राण घर पहुँचनेके पहिले ही देहपिंजर छोड़कर चले गये थे।

यह तो हुई विवाह न होकर प्रेम करनेकी कहानियाँ। किन्तु विवाह करनेके बाद फिर विवाह करनेके लिए प्रेमकी कहानी भी है। इसमें विवाह और प्रेम दोनों ही एक साथ मिल गये थे।

बादशाह हुमायूँ दिल्लीमें हारकर सिंहासन छोड़कर राजपूताना और सिन्धुकी मरुभूमिमें भाग गये। यद्यपि उनके पास गुज़र-बसर करनेका भी स्थान नहीं था किन्तु यहाँ उनका नया प्रेम जाग उठा। इतना कहकर मैंने अपने साथियोंकी ओर अर्थपूर्ण दृष्टिसे देखा। वे सब इस बातको अस्वीकार करना चाहते थे कि मरुभूमिमें भी प्रेम पनपता है।

बादशाह हुमायूँकी यह प्रेम-कहानी सच है इस सम्बन्धमें सन्देह करने-की कोई गुंजायश नहीं है। उनके भिश्ती जौहरसे लेकर और अनेकोंने इस घटनाको लिखा है। मरुभूमिमें हुमायूँकी सौतेली माँ (सौतेले भाई हिन्दालकी माता) ने एक भोज दिया। उस भोजमें हामिदा नामकी सोलह वर्षकी एक छोटी-सी सुन्दरी कन्या भी थी। सोलह वर्षकी हामिदा और तैंतीस सालके राज्य हारे हुए हुमायूँ, जिन्हें ख़ूब अफ़ीम खानेकी लत थी और उस समय वे छै विवाहिता स्त्रियोंके स्वामी भी थे।

हुमायूँकी सौतेली बहन गुलबदनके लेखोंसे पता चलता है कि इन छः स्त्रियोंमेंसे कमसे-कम तीन शेरशाहके साथ युद्धमें खो गई थीं। एक स्त्री शेरशाहके हाथोंमें पड़ गई थी और उसकी कृपासे अपने स्वामीके पास वापस आ गई थी और बाक़ी दो सम्भवतः भागते समय हिड़िक नदीमें डूबकर मर गई थीं। अभागेका घोड़ा मरता है और भाग्यवान्की स्त्री मरती है यह तो मानी हुई बात है।

जो भी हो, भाग्यहीन हुमायूँकी कई स्त्रियाँ बच गई थीं। किन्तु दुर्भाग्यमें भी प्रेम तो अपना काम करता ही रहता है। मरुभूमिमें भी हृदयके सब बन्द द्वारोंमेंसे उसका अंकुर फूटकर एक छोटे बिरवेके रूपमें सिर उठाकर खड़ा हो जाता है।

प्रथम दर्शन हीमें प्रेम। इसमें विवाहकी वासना नहीं थी, शुद्ध प्रेम था। इसका प्रमाण भी हाथों-हाथ मिल गया।

प्रथम दर्शनही में हुमायूँने विवाहका प्रस्ताव किया। सौतेला भाई हिन्दाल सुनते ही लाल हो गया। अपने पास जो हैं उनका कोई हिसाब नहीं, और उसके ऊपर इस पनपते पौधेपर पत्थर। और विवाह। अभी तक तसल्ली नहीं हुई।

किन्तु वहाँ लड़कियोंकी शादीके लिए तैंतीस सालका वर कुछ अधिक भी नहीं था। और उसपर हुमायूँने यह भी कहा कि राजाओंकी उम्रपर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता है।

बड़े-बड़े मौलानाओंने यह कहा कि तुर्की सुन्नी होकर फ़ारसकी शिया कन्यासे विवाह ? छिः ! जाति, कुल, मान सभी कुछ चला जायगा।

आत्मीय कुटुम्बियोंने कहा—हुँ : प्रथम दर्शन ही में विवाह। समाजमें यह मना है। फिर वधूके देनेके लिए तुम्हारे पास मेहर तक नहीं है।

और कन्या ? उसका भी इस विवाहमें मत नहीं था। सिर्फ़ उम्र ही में नहीं हुमायूँ लम्बा भी इतना था कि उसके साथ खड़े होनेके लिए छोटी-मोटी हामिदाको अपने साथ हमेशा एक स्टूल रखना होगा।

किन्तु हुमायूँ छोड़नेवाला आदमी नहीं था। उसने अपनी सौतेली माँसे बहुत मिन्नतें कीं। उसके थोड़ा भरोसा देनेपर उसके प्राण लौटे। हुमायूँने परकी क़लमसे लिखा कि किसी तरह उसे राज़ी करो, नहीं तो मैं पागल और अन्धा हो जाऊँगा। मैं सब कुछ करनेको राज़ी हूँ। मेरे नेत्र आशासे उसी ओर ताक रहे हैं।

अन्तमें हिन्दाल भी उसे इतना पीड़ित देखकर राज़ी हो गया। उसने यह सोचा कि इस तरहका समझ-बूझकर किया हुआ विवाह फले-फूलेगा।

हुमायूँकी तबीयत खुश हो गई और उसने हामिदाको फिरसे एक बार देखना चाहा। किन्तु कन्या तब भी राज़ी नहीं हुई।

बादशाह मुझे देखकर करेंगे क्या? यदि मुझे उन्हें सलाम करना है तो वह तो मैं उस दिन करके सम्मानित हो चुकी हूँ। बादशाहको दुबारा सलाम करनेकी रीति नहीं है।

एक साधारण घरकी कन्याके इस उत्तरको सुनकर बादशाह सिर नीचाकर रह गये।

हुमायूँने अब हामिदाके मनको आकर्षित करनेके लिए तरह-तरहकी चेष्टाएँ कीं। उसने तरह-तरहकी कविताएँ लिखकर भेजीं। किन्तु हामिदा नहीं मानी। आईनके अनुसार बादशाहने उसे एक बार देख लिया है। दूसरी बार देखनेका कोई नियम नहीं है। मैं नहीं जाऊँगी।

सौतेली माँने भी उसपर ज़ोर डाला—तुम्हारे पिता तुम्हारा विवाह किसी न किसीके साथ तो करेंगे ही। फिर बादशाहसे बढ़कर और सुपात्र कहाँ मिल सकता है?

नहीं, तब भी नहीं।

अन्तमें हामिदाने उत्तर दिया—मैं उसके साथ विवाह करूँगी जिसकी गरदन तक मेरा हाथ पहुँच जायगा। जिसके केवल कुरते तक मेरा हाथ पहुँचेगा उसके साथ नहीं करूँगी।

इस आपत्तिको सुनकर हुमायूँको थोड़ी आशा हुई।

फिर भी किसी तरह चालीस दिनोंकी कठिन साधनाके बाद कहीं जाकर हामिदा हुमायूँसे विवाह करनेके लिए राज़ी हुई।

उस निष्ठुर अनिश्चित युगमें हुमायूँकी व्याकुल विनती-भरी प्रेमकी कविता, रोमाण्टिक युगकी प्रेमकी कविताकी तुलनामें किसी तरह भी कम नहीं है। उसकी कविताका भावार्थ यह है—

"भिखारी विनती करता है; हे प्रिये, उसपर दया करो। उसके पास आओ। परदेको हटाकर अपनी झलक दिखाओ। तुमने तृप्ति और क्षुधाके बीचमें इतना व्यवधान क्यों रख रक्खा है। मेरा हृदय रो रहा है। हे रानी, घूँघट दूर करो। इस रूपको घूँघटमें क्यों छिपा रक्खा है ? मैं भीख माँगता हूँ। तुम्हारी जय हो। इस बार तो अपने प्रेमीके पास आ जाओ।"

मित्र लोग चुप तो हो गये, किन्तु माने नहीं। वे कहने लगे कि यह कहानी मरुभूमिमें प्रेम पनप उठनेका उदाहरण तो है, किन्तु पात्र-पात्री मरुभूमिके ओसिस नहीं थे। मुग़ल लोग तो हमेशा प्रेममें पड़ते थे और मर-पिटकर उठ खड़े होते थे–यह कौन नहीं जानता ?

मैं उनके मतसे सहमत न हो सका। ऐसी अवस्थामें यदि हुमायूँके मनमें प्रेम जग उठा तो आप लोगोंमेंसे प्रत्येकके मनमें भी प्रेम केवल घास-की तरह नहीं पैदा हुआ है। ओसिस भी तो बनाना ही पड़ता है।

इस रायके साथ मैंने एक करुण कहानीका योग दिया। निष्ठुर हरम-की एक करुण कहानी।

दाराकी हत्या करा देनेके बाद औरंगज़ेबने उसकी दो स्त्रियोंको अपने हरममें भेज देनेका हुक्म दिया। आर्मीनियाकी सुन्दरी उदयपुरी पहिली बार कहनेपर ही राज़ी हो गई। सम्राट्की प्रिय बेग़म होनेपर उसकी मुट्ठीमें बहुत क्षमता आ जायगी और चरणोंमें अनन्त ऐश्वर्य। राजपूतनी राणादिलने उसके बुला भेजनेका मतलब पूछा। जवाब यह मिला कि शास्त्रके अनुसार मृत बड़े भाईकी स्त्रीको छोटा भाई दखल कर सकता है। राणादिलने इसपर प्रश्न किया—मुझमें ऐसी कौन-सी चीज़ अच्छी है जिसके लिए बादशाह मेरी कामना कर रहे हैं ?

औरंगज़ेबने कहला भेजा कि वे उसके सुन्दर केशोंके गुच्छे देखकर मुग्ध हो गये हैं। यह सुनते ही राणादिलने अपनी समस्त केशराशि काट डाली और उसे औरंगज़ेबको बतौर भेंटके भेज दिया। साथमें एक लिखा

हुआ उत्तर भी भेजा—आपको सुन्दर केशराशि अच्छी लगी, इसलिए भेज रही हूँ। ये बराबर ऐसे ही रहेंगे।

किन्तु बादशाह केवल सुचारु केशराशि तो चाहते न थे, वे तो उसकी ताकमें थे। इससे इस बार कुछ खुलकर जवाब आया—तुम अपरूप सुन्दरी हो, तुम्हें स्त्रीके रूपमें चाहता हूँ। अब यह समझ लो कि मैं ही तुम्हारा दारा हूँ। दाराकी स्त्रीसे अधिक सम्मान तुम्हें मेरे पास मिलेगा। तुम्हें पटरानी बनाऊँगा।

राणादिलके मनमें कोई संशय नहीं आया। किसी सम्मान सम्पत्तिका लोभ नहीं आया। एक समय वह एक सामान्य नर्तकी थी। सम्राट् शाहजहाँके हरमकी असंख्य रूपसी पेशेवर नाचनेवालियोंमें-से एक। उसके अपरूप रूपलावण्यको देखकर युवराज दारा मुग्ध हो गये थे। शाहजहाँके पास जाकर दाराने अपने मनकी बात प्रकट की। वे इस नर्तकीके साथ रीति-रस्म सहित विवाह करना चाहते थे। सम्राट् राजी नहीं हुए। युवराज्ञीके मनको दुःख पहुँचेगा और उसके आत्मीय स्वजनोंका प्रताप बहुत अधिक है। नहीं, ऐसी बात मानना ठीक नहीं होगा।

व्यर्थ प्रेमके कारण व्याकुल होकर दारा बीमार पड़ गये। यहाँ तक कि हकीम लोग उनके जीवनके सम्बन्धमें चिन्तित हो उठे। बेटेकी प्राणरक्षाके लिए शाहजहाँको इस विवाहके लिए राजी होना पड़ा। कांचनी राणादिल मुग़ल साम्राज्यकी भावी अधीश्वरी बन गई।

उसी राणादिलने औरंगज़ेबका आह्वान सुनकर अपनेको कमरेमें बन्द कर लिया। छुरी लेकर अपने सुन्दर मुखको सम्पूर्ण रूपसे क्षत-विक्षत कर लिया। उसके बाद एक कपड़ेमें ताज़ा रक्त, रक्तिम रूपके आभाससे भरा रक्त बादशाहके पास भेज दिया। मेरे जिस मुखके सौन्दर्यकी बादशाह कामना करते हैं, उसी सौन्दर्यको इस कपड़ेमें भेज रही हूँ। इससे यदि उनकी कामना तृप्त हो जाय तो, मैं भी तृप्त हो जाऊँगी। अब मेरे पास कोई रूप बाक़ी नहीं है।

इस कहानीको कहकर मैं ख़ास राजपूतोंके घरकी प्रेमकी कहानी सुनना चाहता था। मैंने कहा—आप लोगोंका जीवन युद्ध करते बीतता हैं। किन्तु आप लोगोंके हृदयोंमें प्रेम अन्तःसलिला फल्गूकी तरह प्रवाहित होता है। इस बार आप राजपूतोंके प्रेमकी कहानी सुनायें।

तर्कमें हारकर वीर पुरुष करुण नेत्रोंसे दूसरी ओर देखने लगे। ऐसा लगा मानो वे डाकुओंके बीच घिर गये हों और उधरसे कड़कती आवाज़ में सुनाई पड़ रहा हो, जो कुछ रुपये-पैसे छिपे हों उन्हें बाहर निकालो, चट-पट, नहीं तो जान चली जायगी।

किन्तु राजपूतकी चाहे जान चली जाय किन्तु मान नहीं जा सकता। रामगोपालजी बोले—हमारे इस देशमें कहीं-कहीं विवाहके अलावा प्रेम हुआ है। किन्तु उसकी गिनती एक्सीडेण्ट-दुर्घटनामें करनी चाहिए। मतलब यह कि ये सब बातें यहाँके लिए बाहरी—ग़ैर-सी हैं।

मेरी आँखोंमें जो प्रश्न उदित हुआ था उसे वे समझ न सके। नदीमें डूबता हुआ मनुष्य जो कुछ खर-पतवार सामने आता है उसे ही पकड़ता है मैं भी उसी भावसे ऊर्ध्वश्वास लेता हुआ बोला—अच्छा, ज़रा बाजबहादुर और रूपमतीकी कहानीपर विचार कीजिए।

रूपमती मालविका थी। अर्थात् मालव देशकी राजपूतनीकी कन्या। रूप, नृत्य, गान, कविता-रचनामें उसकी बराबरी समस्त भारतमें कोई नहीं कर सकता था। रूपमतीके रूपकी कथा, उसकी कविता-प्रतिभाकी कथा राजवाड़ेमें लोगोंके मुखसे सुनी जा सकती है। आज भी मरुभूमिकी नीरव निशीथिनी उसके हृदयोच्छ्वासित गीतके गानसे मुखरित हो उठती है। केवल मर्मस्पर्शी गान ही ध्वनित होते हैं, प्राचीन राजपूती चित्रके सबसे अधिक मर्मस्पर्शी रोमांस रूपमतीके निशीथ अभिसारमें पाये जाते हैं।

इस समय भी मालवदेशमें सबसे अधिक मनको मस्त कर देनेवाला और देखनेमें अच्छा लगनेवाला प्रासाद रूपमतीका महल ही है। छविकी तरह एक

मार्ग ऊँची पर्वतकी चोटी तक चला गया है। जहाँ मार्ग समाप्त होता है वहीं पर्वतके बीचमें रूपमतीका महल खड़ा है।

और उसके प्रियतम बाजबहादुरका महल उससे नीचे रेवाकुण्डके उस पार था। शेरशाहके पठान सामन्तका पुत्र बाजबहादुर इस पहाड़पर शिकार-के लिए आया करता था किन्तु नाच-गान और रूपमें अतुलनीय राजपूत-कन्या रूपमतीको देखकर वह उसके प्रेममें पड़ गया। किन्तु रूपमतीने उसकी बातोंको कानोंसे सुना तक नहीं। उसे अपने निकट तक आने न दिया। किन्तु बाजबहादुर छोड़नेवाला मनुष्य न था। अन्तमें रूपमतीने एक असम्भव शर्त रखी। यदि वह रेवा नदीको पहाड़के ऊपर ले आयेगा तो पठानको राजपूतनी मिल जायगी।

अच्छा, यही सही।

कहानी कहती है कि रेवा नदीकी देवीने बाजबहादुरको एक वृक्षके पीछे रेवाकी झरनाधाराको खोजनेके लिए इंगित किया। उसे खोजकर उसने जलको रेवाकुण्डमें बाँधकर अटका दिया और रूपमतीको पानेका दावा किया। अब कुछ भी कहा नहीं जा सकता था, कोई उपाय न था।

ऐतिहासिक कफ़ी खाँने लिखा है कि अकबरके नव-निर्माण साम्राज्यके सेनापति ऊधमखाँने बाजबहादुरको हराकर मालवा दखल कर लिया। किन्तु इसके पूर्व ही उसने अपने हरमकी सब स्त्रियोंको खत्म करनेका हुक्म दिया। मुसलमानोंमें हिन्दू स्त्रियोंके समान जौहर व्रतकी या सती होनेकी प्रथा नहीं थी। उसके ऊपर रूपमती थी केवल नर्तकी, विवाहिता स्त्री तक नहीं। पठानोंने अनेकोंको घायल किया और अनेकोंका खून। इसी समय ऊधमखाँकी सेना आ पहुँची। उसने भी मनमानी की। समसामयिक ऐति-हासिक बदायूँने अपनी आँखोंसे देखा कि "भगवान्की सृष्टिमें इंसानको शाक-भाजी और मूलीके समान" समझ लिया गया है।

रूपमती सांघातिक रूपमें घायल अवस्थामें पकड़ी गयी। कातर कण्ठसे उसने कहा—मुझे इस बार मरने दो।

अपने प्रेमीके जल्लादके हाथों मारात्मक घाव लगनेपर भी रूपमती केवल इतना ही बोली—मुझे भी मरने दो।

ऊधमख़ाँने उसे आश्वासन दिया—मैं तुम्हें बचाऊँगा। तुम भी अपनेको बचानेकी चेष्टा करो। अच्छी हो जानेपर तुम्हारे प्रियतमके पास तुम्हें भेज दिया जायगा।

रूपमती धीरे-धीरे अच्छी होने लगी। उसके सर्वांगमें रूप एक बार और ज़ोरसे लहलहा उठा। किन्तु प्रेमीके पास जानेका समय क्या फिर आया?

ऊधमख़ाँने ख़बर भेजी—रूपमती, अब आँखोंके आँसू पोंछकर तैयार हो जाओ। मैं स्वयं तुम्हारे रूपका भिखारी हूँ।

घृणासे रूपमतीने मुँह फेर लिया और जवाब भिजवा दिया—मैं केवल एक ही की बन्दिनी हूँ। किसी अन्य पुरुषके साथ रहनेको राज़ी नहीं हो सकती।

बन्दिनी रूपमतीने दुःखित हो एक गीत गाया—

तुम बिन जियरा रहत-रहत माँगत हे सुखराज।
रूपमती दुखिया भई बिना बहादुरबाज॥

किन्तु जिसके हृदय ही नहीं है वह हृदयको गला देनेवाला गीत सुनकर ही क्या करेगा!

रूपमतीने बहुत विन्नती की।

थोड़ा राखो मान, अलीजा, थोड़ा राखो मान
हाथी माँगूँ, घोड़ा माँगूँ, पैदल पाँच हज़ार
रन जीतवाले नगाड़ा माँगूँ उदयपुरके राज
चाँदी माँगूँ, सोना माँगूँ, ताके लड़त तलाक
बाँध सारूँ बीरा माँगूँ, चुड़ीकी पत राख।

हाय, राजपूतानीकी चूड़ीकी मर्यादा। मल्हार रागमें गाये हुए इस गीतको सुनकर भी अलीजाहका मन नहीं पसीजा।

—अच्छा ठहरो। स्वेच्छासे नहीं तो ज़ोर-जबरदस्तीसे मैं तुम्हें अपनी कर ही लूँगा।

ऊधमख़ाँकी आज्ञा सुनकर रूपमतीने उसे अभिसारका समय दिया।

उसने सबसे अधिक मँहगी पोशाक और सुन्दर गहने पहने। मिलन-कुंज, खिले फूलों और सुगन्धित दीपबत्तियोंसे भर उठा। कुंजके बाहर रूपमतीके स्वरचित गानका सुर गूँजने लगा। पुष्पशय्यापर सोनेके पूर्व रूपमतीने अपने हाथसे मुखपर घूँघट डाल लिया। इस बाधासे नूतन प्रेमी रतिशय्याके पास आकर अधिक आकुल होगा।

ऊधमख़ाँ तड़पता हुआ आया। शीघ्रतासे गानेके स्वर बजने लगे। फूलोंका सौरभ और दीपमाला और भी अधिक मतवाली हो उठीं। आवेशमें विह्वल होकर उसने रूपमतीके मुखपर पड़े घूँघटको अपने असहिष्णु हाथोंसे हटाया। चकित होकर खड़ा रह गया मानो कालसर्पने फनसे डस लिया हो। उसके मुखपर मृत्युकी विवर्ण छाया थी।

रूपमतीका बाजबहादुरके साथ विवाह नहीं हुआ था। उनका मिलन किसी वेद-मन्त्रके पाठसे या निकाहसे नहीं हुआ था। उसका जन्म केवल नाचनेवालीका साधारण जीवन व्यतीत करनेके लिए हुआ था। किन्तु उसने एकनिष्ठ जीवन व्यतीत किया। उसने मृत्युका वरण इसलिए किया कि अपने प्रेमीके लिए अपनेको उत्सर्ग कर दे। वह केवल एक मनोहर निपुण नर्तकी मात्र थी। उसके लिए यह आवश्यक न था कि वह किसी एक पुरुषके प्रति निष्ठावान् रहती, और न उसे पुरुषोंसे सहानुभूतिकी प्रत्याशा ही थी।

तब भी उसका प्रेम इतना पवित्र और निष्ठावान् था कि उसकी माँगपर किसी सिन्दूरलीककी आवश्यकता न थी। भारतीय घरोंमें सन्ध्याको तुलसीतलमें प्रदीप जलाकर और शंखध्वनि करके नारी अपने स्वामी और गृहस्थीकी मंगल-कामना करती है। नर्तकी मालविका रूपमतीकी गिनती भी उन्हींमें की जायगी।

उत्तर कलकत्तेकी गलीके मोड़पर नीलकण्ठ केबिनके अड्डेसे लेकर उदयपुरके महाराणाके सहेली बाग़ तक समस्त तर्का तर्कोंकी आलोचना, समस्त मानसिक प्रश्न यहाँ पहुँचकर समाप्त हो जाते हैं और शान्ति पा जाते हैं ।

: ७ :

हाथोंमें डण्डा लिये लड़कियोंका एक झुण्ड अकस्मात् रास्ता रोककर खड़ा हो गया ।

अरे थामा, थामा, मोटर थामा । बंगालीसे मिलती-जुलती बोली सुनकर मेरे कान खड़े हो गये । किन्तु भूल गया था, यह बंगाल नहीं रजवाड़ा है । और केवल रजवाड़ा ही नहीं बल्कि भीलवाड़ा अर्थात् भीलों-का देश । वे क्या जानें बंगाली और लड़कियोंके हाथोंमें डण्डे देखकर एक बंगालीकी उत्कंठा ।

होलीके दिन यह सब क्या होनेवाला है, राम ।

सिरकी पगड़ीपर हाथ फेरते-फेरते ठाकुर साहब सामनेकी सीटके पास आकर खड़े हो गये । विपत्तिसे घबड़ाते नहीं थे, वीरत्व तो उन्होंने जन्मघुटीके साथ ही पिया था । किन्तु उनका जीवन एक कहानी है । रजवाड़ेमें सभी जौहरव्रत करके, केसरिया बाना पहनकर शत्रुको मारते थे या मर जाते थे । प्राण दे देते थे किन्तु मान नहीं छोड़ते थे । ये सब अमर इतिहासकी बातें उन्हें विरासतमें मिली थीं । उनकी एक कहानी, जो सत्यपर आधारित है, सुनाता हूँ ।

प्रकाण्ड सिंहके समान पराक्रमी ठाकुर साहब एक जागीरदार थे ।

नाम उनका नहीं बताऊँगा नहीं तो वे इसी वातपर लड़ाई कर बैठेंगे। अवश्य ही वह बीसवीं शताब्दीकी हथियार हीन लड़ाई होगी। वे अपने पूर्व पुरखोंके समयसे जागीरका भोग करते आ रहे थे। उनके पूर्वज अपनेको भी शक्तिशाली रखते थे और अपनी घुड़सवार सेनाको भी। जब दरवारसे हुक्म होता था, वे युद्ध करनेके लिए चल पड़ते थे। यहाँ सामन्त शाहीके खूब मजे थे। राजा अपने राज्यको ठीक रखनेके लिए ज़मीन देता था। जिसे मिलती थी वह ज़मीनके बदले 'जान' देनेके लिए सर्वदा तैयार रहता था। वह अपनी जागीरमें चोरी या ज़ुल्म नहीं कर सकता था, और व्यवसायियोंकी रक्षा करता था। जितनी बड़ी जागीर होती थी उसी हिसावसे युद्धमें सिपाही देने पड़ते थे। यदि लड़ाई नहीं होती थी तो प्राण देनेकी कोई आवश्यकता न थी। किन्तु सिपाहियोंको मज़बूत रखना होता था। दरवार भी सामन्तोंका यथायोग्य सम्मान करता था और आपदा-विपदामें उनकी रक्षा करता था। और सामन्त भी दरबारकी तरह अपने प्रजाजनोंका मान रखते थे और रक्षा करते थे।

ठाकुर साहबके पिता-पितामहोंने अपने कर्तव्यका ठीक तरहसे पालन किया था। और फिर इस युगमें तो जागीरदारोंको विशेष सुविधा मिल गई थी। ब्रिटिश शान्ति अर्थात् पैक्स ब्रिटानिकाके प्रभावसे आपसमें मारपीट या लड़ाई-झगड़ा नहीं हो सकता था। इससे जागीरदार खूब आराम तलब हो गये थे। अधिक आरामतलवीसे दिमाग़ खाली हो जाता है और उसमें भूत अपना डेरा जमा लेता है, इतना कहकर ठाकुर साहबने दीर्घनिःश्वास फेंकी।

सुनकर मैंने भी दीर्घ निःश्वास छोड़ी। दिमाग़के भूतने ठाकुर साहबको दीर्घसूत्री बना दिया और लापरवाही तथा आरामतलबीके जीवनका उपभोग करनेकी वासनाकी ओर प्रेरित किया। किन्तु सीधे-सादे, मर्यादाके अन्दर रहनेवाले सुशील भारतीय जीवनमें यदि एक-आध बार भूतका नाच हो भी जाय तो अधिक बुरा नहीं माना जाता। उनके दिन किसी तरह कट

ही जाते हैं। उन्हें भूतसे प्रेरित हो हाथपर हाथ रखकर इतमीनानका जीवन बितानेकी फ़ुरसत ही नहीं मिलती।

किन्तु ठाकुर साहबका भाग्य! वे विपत्तिमें पड़ गये। पड़ोसके जागीरदारसे जागीरकी मिलकियतको लेकर कुछ झगड़ा हो गया। मामला बढ़ते-बढ़ते प्रीवीकौंसिल तक पहुँचा। और अन्तमें हार भी इन्हींकी हुई। अब ये क्या करें, ज़रा सोचकर तो देखिए। कविवर रवीन्द्रको "कथा उ काहिनी" की उस चमत्कारपूर्ण कविताको ज़रा सोचिए। चित्तौड़के राणा कुंभा, हाड़ा (हर) वंशके बूँदीके राजासे पराजित होकर लौटे और प्रतिज्ञा कर बैठे कि जब तक बूँदीका क़िला भूमिपर खड़ा रहेगा मैं जलस्पर्श तक नहीं करूँगा। इधर बूँदीका क़िला है क्या चीज़ इसका विलक्षण प्रमाण उन्हें मिल ही चुका था। उसे उदरसात् करना उनके बसकी बात न थी। मगर प्रतिज्ञा तो कर ही बैठे। यद्यपि हल्के पड़ रहे थे किन्तु शपथ खाकर अन्न-जल छोड़कर राणा बैठ गये।

अन्तमें सरदारोंने खूब सोच-विचारकर एक तरक़ीब ढूँढ़ निकाली। रातों-रात एक नकली बूँदी गढ़ तैयार किया गया। सैन्य सामन्तोंके साथ राणा कुम्भा वहाँ पहुँचे। इस बार बूँदी गढ़भूमिपर सिर उठाकर खड़ा नहीं रह सकेगा।

राणाके आश्रित हाड़ा वंशका वीर एक सामन्त था। वह शिकार खेलते हुए उधर जा निकला और एक दृष्टि हीमें सब मामला समझ गया। बूँदीका इतना बड़ा अपमान। कभी नहीं, कभी नहीं। जब तक हाड़ा वंशका एक व्यक्ति भी जीवित रहेगा, ऐसा नहीं हो सकता।

उस महावीरके पास धनुष-बाण था। वह राणाकी सेनाके साथ युद्ध करने लगा। अन्तमें प्राण देकर उसने अपने वंशके मानकी रक्षा की। बिना रक्तपातके नकली बूँदी गढ़ भी राणा मिट्टीमें मिला न सके।

ऐसे थे लम्बी पगड़ी बाँधनेवाले हमारे ठाकुर साहब। आज पैक्स ब्रिटानिकाके युगमें बिना तलवार चलाये और प्राण दिये जागीर शत्रुके

हाथोंमें कैसे चली गई ? यों चाहे इस मामलेमें वे हार ही जाते । किन्तु वीर धर्म भी तो कोई चीज़ है ।

इधर जो जागीरदार मुक़दमा जीते थे वे भी दरबारके जागीरदार थे। उनके विरुद्ध लड़ाई करनेमें भी स्वामीधर्म बाधक था। ठाकुर साहब क्या करें ?

हाय ! ज़ोरदारकी ज़मीन—यह सतयुगी नियम इस घोर कलियुगमें खत्म हो गया। दरबारको अच्छी-सी भेंट और सलामी देकर भी काम बन सकता था। किन्तु अब तो वह रास्ता भी बन्द हो चुका था। दुष्ट लोगोंने इसे 'घूस' कहकर बदनाम कर रखा था। फिर सात समुद्र पारकी प्रीवीकौन्सिल भी अपने हाथसे बाहरकी चीज़ थी। एक बात यह भी थी कि अंग्रेज़ लोग हुक्मके आगे सलाम और सलामी कुछ भी नहीं मानते थे। ठाकुर साहबका धन भी गया, मान भी गया। यदि पुराना युग होता तो लड़ाई करके प्राण तो दे सकते थे। किन्तु इस हृदयहीन वैश्ययुगमें उस आदर्शका पथ भी बन्द हो गया। कोई रास्ता नहीं दिखाई देता।

उनके वंशका सम्मान कितना बड़ा था, यह मैं तब समझा जब ठाकुर साहबने अन्टालाके क़िलेको जीत लेनेकी कहानी सुनाई। यह उनके पूर्व-पुरुषोंकी वीरताकी कहानी थी।

जहाँगीरने चित्तौड़पर कब्ज़ा करके राणाको मेवाड़के पहाड़ों और जंगलोंमें भगा दिया। किन्तु इससे राणाके सामन्तोंके वीरत्वमें कमी नहीं आई और न अपने वंशके सम्मानकी रक्षा ही में वे पीछे हटे। जब यह तय किया गया कि अन्टालाके क़िलेको हस्तगत करना है तब किस वंशकी सेना आगे रहकर युद्ध करेगी, इसपर तुमुल झगड़ा हो गया। राणा सैन्य-सामन्तोंको लेकर पहाड़ोंमें चले गये थे। समतल भूमिपर वह विकट शक्ति-शाली पत्थरका पहाड़ी क़िला अचानक आक्रमण करके लेना था। क़िलेके फाटकमें बड़े-बड़े लोहेके कीले जड़े थे। हाथीका सख्त चमड़ा तक उनसे

बिंध जाता था। इसलिए हाथीके धक्केसे क़िलेका फाटक खोलना या तुड़वाना सम्भव न था।

अबतक युद्धोंमें चन्दावत गोत्रके सरदार आगे रहकर युद्ध करते थे, यह उनका प्राप्त किया हुआ सम्मान था। सबसे पहले प्राण देनेका अधिकार।

किन्तु शक्तावत गोत्र भी कम नहीं था। हाल ही के कई युद्धोंमें उन्होंने अपनी वीरताकी अच्छी धाक जमाई थी। फिर उसपरसे यह क़िला उन्हींके इलाक़ेमें पड़ता था। इसलिए चन्दावतोंको पहिले मरनेका अधिकार कैसे मिल सकता था ?

ज़रा इस स्थितिमें अपनेको रखकर तो सोचिए कि कैसा लगता है ?

पुराने कलकत्तेकी एक गलीमें थोड़ी-बहुत वीरताका अभिनय हम लोगोंने भी किया था। बड़े रास्तेके मोड़पर कुछ गुण्डे जमा थे। वहाँ तक कौन आगे चले, इसपर हम लोगोंमें कम कहा-सुनी और मार-पीट नहीं हुई। किन्तु बड़े रास्तेपर आगे बढ़ कर जानेके लिए कोई भी राज़ी नहीं हुआ। इधर-उधरका निरापद रास्ता ही सोचते-खोजते रह गये।

बुद्धिमान् राणाने कहा—जो गोत्र अन्टालामें पहिले पहुँचेगा, उसे ही आगे रहकर लड़नेका अधिकार होगा।

अन्टाला चलो। चलो अन्टाला।

रात्रिके अन्तिम प्रहरमें दोनों दल रवाना हुए। एक ही समय। कौन अधिक वीर है, इसका फ़ैसला आज अच्छी तरहसे हो जायगा। सामने शत्रु था—दुर्दम्य पहाड़ी क़िलेमें। पीछे पहाड़के उस पार स्त्री और परिवार फलाफलकी अपेक्षा कर रहे थे। वीरोंके दलोंके साथ-साथ चल रहे थे उनके चारणोंके दल। वे उनके गोत्रके पूर्वपुरुषोंकी वीर-गाथा गा रहे थे और नूतन वीरताके लिए प्रेरणा दे रहें थे।

निःशेष प्राण जे करिबे दान
क्षय नाई, तार क्षय नाई।

निःशेष प्राण जो करे दान
उसका क्षय होता नहीं, नहीं क्षय ।

शक्तावत दुर्गके द्वारपर पहुँचे । भोर नहीं हुआ था, शत्रुने तैयारी नहीं की थी । झुण्ड-के-झुण्ड दीवालपर चढ़ गये और तुमुल युद्ध छिड़ गया ।

चन्दावत इस इलाक़ेमें विदेशी थे । उन्हें ठीक तरहसे रास्ते भी नहीं मालूम थे । जलाभूमिपार कर वे कुछ देरीसे पहुँचे । किन्तु उन्होंने एक समझदारीका काम यह किया कि साथमें सीढ़ी लेते आये थे । चन्दावत सरदारने तुरन्त उसे दीवालसे लगाया और ऊपर चढ़ने लगे । किन्तु गोला लगनेसे उनका सिर दलके बीचमें आकर गिर पड़ा । उनके भाग्यमें मेवाड़के सैन्यदलमें सबसे आगे रहकर लड़ना नहीं लिखा था ।

दोनों दल बाधा पाकर रुक गये ।

शक्तावत सरदारके पास हाथी था । किन्तु फाटकके लोहेके कीले हाथीको बार-बार लौटा देते थे । सिरका चमड़ा फट गया था । चारों ओर पतझड़के पत्तोंके समान शक्तावतोंके मृत शरीर गिरने लगे । इतनेमें चन्दावतोंकी ओरसे तुमुल चीत्कार सुनाई दिया । यह क्या उनकी जय-ध्वनि थी ?

अब देरी करनेसे काम नहीं चलेगा । क्या अन्तमें चन्दावत ही जीत जायेंगे ? क्या उन्हें सेनामें सबसे आगे रहकर मरनेका अधिकार मिलेगा ? शक्तावत सरदार हाथीकी पीठसे उतर पड़े । और क़िलेके दरवाज़ेके लोहेके कीलोंमें पीठ लगाकर खड़े हो गये । और महावतको हुक्म दिया कि हाथीको छातीके ऊपर ज़ोरोंसे ठेल दे । इससे हाथीके मस्तकमें कीले नहीं बिधेंगे । शक्तावत सरदारने कीलोंको अपने शरीरसे ढँक लिया । हाथीका धक्का लगते ही चरमराकर क़िलेका दरवाज़ा खुल गया और कीलोंसे विद्ध शक्तावत सामन्तकी देह अण्टालेमें पहुँच गई ।

और उस समय इधर क्या हो रहा था ?

चन्दावत सरदारकी मृतदेह अण्टालामें पहुँच गई थी। उसी समयकी जय-ध्वनिको सुनकर शक्तावत सरदारने अपनी देह कीलोंके आगे रख दी थी। शत्रुपक्षके गोलेके घावसे क्षत-विक्षत चन्दावत सरदारकी देहको उनके बादका नायक अपनी पीठपर पगड़ीसे बाँधकर सीढ़ीपर चढ़ने लगा। सामने का रास्ता वह अपने बरछेसे साफ़ करता जाता था। और इस तरह पीठपर बाँधे शवको लेकर वह क़िलेके अन्दर पहुँच गया। उसीके ही मुखसे जय-ध्वनि निकली थी। चन्दावतकी जय। जय चन्दावत।

प्रायः इसी समय क़िलेका दरवाज़ा भी चरमराकर टूटा और शक्तावत की मृतदेह क़िलेके भीतर पहुँची। किन्तु उसी क्षण चन्दावतोंका सेनामें आगे रहनेका अधिकार प्रतिष्ठित हो चुका था।

अपने मानको रखनेके लिए प्राणोंको इस तरह दे देने वाले राजपूत होकर ठाकुर साहब अब क्या करें ?

उस रूप-कथाके युगकी सीधी-सादी सरल विचार-धाराका मार्ग अब बन्द हो गया है। अब तो तलवारके बदले दूर तक जिह्वाकी लड़ाई चलने लगी है। उसीके कारण इनकी हार हो गई। युद्धमें हार जाना भी वीर-धर्म था। अब दूसरे पक्षके—इस युगमें शत्रुपक्ष कहना बेमानी होगा—उनकी जागीरकी मिट्टीपर पैर रखनेके पूर्व ही उन्हें अपनी स्त्री-पुत्र, परि-वार, पगड़ी और तलवार-खानेको लेकर जागीर छोड़कर उदयपुर नगरमें चला आना पड़ा है।

एक दीर्घ निःश्वास फेंककर संक्षेपमें वे मुझसे बोले—अब क्या करूँ ? अपनी जागीरकी मिट्टीपर मैं उन्हें पैर रखने न देता। तलवारसे उन्हें रोकनेकी चेष्टा करता। इसीसे पहिले हीसे छोड़कर चला आया।

ठाकुर साहबने मोटरके सामने उठे हुए डण्डे देखे और वे मोटरके पास ख़ाली हाथ चले आये। किन्तु तलवारका स्वप्न वे अब भी देख रहे हैं।

मैं भी उनके आजानेपर मोटरसे उतर पड़ा। आस-पासके हाल-चाल देखना चाहता था।

मेरी बालिका कन्या अनुराधा सहित सब लोग मोटरसे उतर पड़े। निश्चय ही ख़ूब मज़ेदार बातें होंगी।

भील कन्याओंने मोटरके शीशेके सहारे रखे हुए डण्डे उठा लिये और उन्हें सिरके ऊपर घुमाने लगीं। उनका उद्देश्य अच्छा था। वे रंगीन छींट-के घाँघरे, लहँगे और दुपट्टे पहने थीं। समस्त शरीर गहनोंसे सजा था। पैरोंके पायजेवोंके रुपहले घुघरू बज उठे। मधुर रुपहला स्वर बजने लगा।

आवेशमें वे लुहर अर्थात् डण्डा नचा-नचाकर देहाती स्त्रियोंका गाना गाने लगीं :—

घूमरे रमोवा मेजासा
घूम रे नखराली
नखराली जादूगरी साँ
घूमरे रमोवा मेजासा।

आनन्द-विभोर होकर सब एक साथ मिल-जुलकर नाचने लगीं। उनके नाचने जादू मन्त्रकी तरह मुग्ध कर दिया। उनके नाचने और गानेके समय ऐसा लग रहा था मानो समस्त फूले वृक्ष झूम-झूमकर उनके साथ नाच रहे हों। इधर-उधरसे महुआ वृक्षोंसे फूल टपक रहे थे। भीलनियोंके नाथसे ऐसा लगा मानो समस्त भीलवाड़ेका अन्तर जाग उठा हो।

मेरा मन भी उसमें रम गया।

पिछले कई दिनोंसे लक्ष्मीविलास प्रासादमें पिशोला झीलकी बहार देखते-देखते मैंने श्री रामगोपालजीसे होलीका खेल दिखा देनेके लिए अनु-रोध किया था। उन्होंने मेरे प्रस्तावपर ज़रा भी उत्साह नहीं दिखाया। और अन्तमें अत्यन्त मुलायम स्वरोंमें यहाँ तक कह दिया कि वह सब देख-कर क्या होगा? इस देशमें होलीमें जो कुछ होता है उसका अच्छा ख़ासा

नमूना कलकत्तेके बड़ा बाज़ारमें भी देखा जा सकता है। कीचड़ और रंग मिले गंदे जलका खेल देखनेकी इच्छाको उन्होंने उत्साहित नहीं किया। इसके बाद मैंने होलीके गीत सुननेकी इच्छा प्रकट की किन्तु यहाँ भी उन्होंने मेरे उत्साहपर ठण्डा जल डाल दिया।

श्री रामगोपालजी अत्यन्त विचक्षण व्यक्ति हैं। उनकी विचार-वुद्धि पर स्वयं मेवाड़के महाराणा भी निर्भर रहते हैं। मैंने भी वही किया। किन्तु यह अपूर्व सुन्दर होलीका गीत। उसके साथ मन मस्त कर देने वाला नाच। शहरके पालिश किये लोगोंको क्या आज वनलक्ष्मी अपना घूँघट उठाकर ऐसा नाच और गाना दिखा सकती है।

मुझे ऐसा लगा कि मेरे आन्तरिक प्रसन्नताके भाव उनपर छा गये हों। वे और भी अधिक मग्न होकर डण्डे-से-डण्डा वजा-बजाकर ताल देने लगीं। मैं भी उनकी तालपर सिर हिलाने लगा।

पता नहीं क्यों उसी समय ठाकुर साहबकी मालवेमें खोई पितृपुरुषों-की जागीरकी बात मनमें आ गई। उन्हें पहिले ही एक मालविका कन्याके प्रिय मिलनका गीत सुनवाया था।

नव वर्षके प्रथम नौ दिनोंतक राजवाड़ेमें गौरी देवीकी पूजाका आयो-जन होता है। बंगालमें शारदीया पूजाके समय जैसे हमलोग प्रवासी प्रियजनोंके लौटनेकी राह देखते हैं वैसे ही गौरी पूजाके समय राजपूत भी व्याकुल हो उठते हैं। शरत् और वसन्त प्रकृति और मनुष्यके मनको उद्वेलित कर देते हैं। गीतोंमें मालविकाएँ अपने प्रेमियोंका आवाहन करती हैं—"मस्त कर देनेवाली वसन्त ऋतु आ गई है। गौरीका नित्य रंगीन उत्सव आ गया है। मेरा हृदय उतावला हो उठा है। शरीरमें गुलावका सौन्दर्य और यौवन भर उठा है। हे प्रिय रसिक, तुम प्रवासमें वहुत दिन रह चुके। अब अपने घर लौट आओ। दिल्ली दरवाज़ेपर नौवत वज रही है। तुम अभी आ जाओ।"

राजपूतनियाँ गावों-गावोंमें नाच-नाचकर गाती हैं।

हमारा प्यारा आज तो गुलाबी गांगोर छे।
जोड़ीरा प्यारा आज तो वसन्ती गांगोर छे।
हमारा प्यारा राजा ॥

ऐसे आनन्दके समय यदि स्वामी बाहर विदेश जाना चाहता है तो भील ग्रामवधू कौन-सा गीत गाकर उसे मना करती है, उसे भी भीलनियों-ने सुनाया—

म्हारा माथा नै महिमद ल्याव
म्हारौ हेजा मारू इहाँ हो रेवोजी।
इहाँ हो रहो उतजा सूरज
इहाँ हो रवाजी।

मेरे सिरकी सौगन्ध, तुम यहीं रहो।

नई व्याही कन्या स्वामीके घर जा रही है। मन जाना चाहता है किन्तु चरण चलना नहीं चाहते। चरणोंके नूपुरोंको वजाते-वजाते भील-नियोंने गाया—

माता बाई से मिलोया
दिरे हातिला वझरो

अरे, थोड़ी देर ठहर जाओ, मैं माँसे विदा माँग लूँ।

वातावरणको थोड़ा भारी होता देखकर ठाकुर साहबने उनसे एक वसन्तपञ्चमीका गीत गानेको कहा। मालव देशकी किशोरी मालविकाएँ चम्बेली नदीके पार 'पनिया भरन' के लिए जाती हैं। सिरपर गगरी हिलती है और पैरोंकी पायजेवें वजती हैं। अपने गीतोंमें वे नई ऋतुका आवाहन करती हैं, नये पत्तोंको नदीके जलमें वहा देती हैं। वे प्रेमके गीत गाती हैं और स्वप्न देखती हैं अपने प्रेमका और रूपरागका। 'गागरमें सागर' भर देती हैं।

लाल फूलोंसे लदी महुआकी शाखाके नीचे बैठकर मैंने एक नई वधूका गीत सुना। बेचारीके पतिने उसको छिपाकर एक और विवाह कर लिया था।

कैसे जवाब करूँ रसियासे।
डाल रे बादल बिच्च चमके तारे।
साँझ लगे पिन लागे प्यारो।
जोर करूँगी जवाब करूँगी,
तो रसियारा मेलामें रीजा रहूँगी।
कैसे जवाब करूँ रसियासे।

अरे, मैं अपने प्रियतमसे कैसे नालिश करूँगी। वह मेघदलोंके बीचमें ताराके समान है। सन्ध्या उसे बहुत अधिक प्यारी लगती है। मैं यदि नालिश या तर्क करूँगी तो उसके साथ मेरा जीवन सुखसे कैसे कटेगा? अरे, प्रियतमसे मैं नालिश किस मनसे करूँ?

ओ रे रसिया, यह घिसे-मँजे संस्कृत काव्यकी विरह विधुरा यक्ष-पत्नीकी प्रेम-विह्वलता नहीं है। इस छोटेसे गीतकी मधुरिमा समस्त देह-मन-आत्माको प्रेम-रससे विह्वल कर देती है।

कालिदासकी उज्जयिनी क्या आज टपकते रक्त-पुष्प महुएके नीचे खिल उठी है? उनके युगमें भी किसी प्रेम-विह्वल नायिकाके मुखसे ऐसी ही करुण आन्तरिकतासे भरा स्वरचित गीत ध्वनित हो उठा होगा। उज्जैनके बाहर ग्राम-किशोरियोंके गीत सुनकर सुसभ्य संस्कृत काव्यकी सैकड़ों मुग्धा विप्रलब्धा, प्रोषित भर्तृकाओंकी छवि नूतन रूप धारण कर मेरे सामने नाच गई। और मैंने देखा कि मरुभूमिके समान मेरा मन भी इतने दिनों तक प्रेमके विना प्यासा ही रहा।

इसके बाद मैं पुरुषोंके होलीके गीत सुनना चाहता था। हमारे शहरके सभ्य जीवनमें पुरुष लोग गाना प्रायः भूल गये हैं। लड़कियोंको गाना सिखाया जाता है, विवाहके लिए। कभी-कभी उससे घर-बार चलानेकी

सुविधा भी हो जाती है। किन्तु वहाँ, घरोंके लड़के साधारण जीवन व्यतीत करनेके लिए किस ध्येयसे गाना सीखें ?

किन्तु मैंने सोचा कि यहाँ वन्य अञ्चलमें बालकोंको भी प्रकृतिसे प्रेरणा मिलती है। वे होलीका गीत अवश्य सुना सकेंगे।

पुरुष लोग रंगभरी पिचकारी लेकर धमार नाचका गीत गाते आगे बढ़े—

रंग झीनो राठौराका रंग झीनो,
भूप तो बड़े भारी
गड़ तो बिकानो

राठौर रंग खेल रहे हैं। रंग खिला रहे हैं। इतना बड़ा बहादुर शानदार आदमी है। वह बीकानेरमें रहता है। तब भी कैसे खेलता है।

कौन कह सकता है कि उन्होंने एक परदेशी पुरबियेको देखकर ही ऐसा गीत गानेको छाँटा। मैं चंचल हो उठा। उनके चंचल चरणोंकी थिरकनसे मेरा मन भी नाच उठा।

सतृष्ण नेत्रोंसे मैंने पश्चिमकी ओर देखा। आरावली पर्वतकी चोटियोंके उस पार मरुभूमिके आगे एक सुन्दर देशपर दृष्टि ठहर गई।

वह देश था ईरान। बुलबुल और गुलाब, साक़ी और शराबका देश। अंगूरके समान रमणीय साक़ी और अंगूरी सुराका देश।

किसी एक मरुप्रान्तरके पास श्यामल स्निग्ध कोना है। हाफ़िजने उसे अपनी अमर लेखनीसे रूप दिया है—

है प्रसन्न मेरा मन प्रभातकी वायु सम
आज पुलकता हुआ आ पहुँचा वह दिन
पुनः होगी मीठी बातें साथ उनके आशासे।

ऊँटोंका कारवाँ मरुभूमिसे चला जा रहा है। उनके गलेकी घण्टियोंकी आवाज़से तीन किशोरी नींदसे जाग उठीं। कारवाँके साथ इत्र सुगन्ध,

जवाहर और मनको वसमें कर लेनेका सामान चलता था। किशोरियोंने तुरन्त स्नानकर पोशाक पहनी। उन्होंने ईरानी अरुणोदयके रंगकी, गुलावी रंगकी और हल्के बैंगनी रंगकी पोशाकें पहनीं। उन्होंने अपने सपनोंको फूलोंके समान धीरे-धीरे सँजोकर रखा था और वह इस पथमें उसे थोड़ा-थोड़ा बाँटनेको तैयार भी थी। वे भी इसी रास्तेपर जायँगी। सबसे बड़ी किशोरी तो मानो प्रेममें पड़नेके लिए तैयार ही बैठी थी। घण्टी-ध्वनि सुनते ही उसका मन प्रेमको पुकारने लगा। उस पुकारपर उसने अन्य दो किशोरियोंको सिखाया।

ओ साथी, मेरे साथी
मैं संग तुम्हारे चलती हूँ।

किन्तु वह विवाहके लिए वाग्दत्ता हो चुकी थी। ग्राम ही का एक युवक था। उसने आकर हाथ पकड़ लिया और बाधा दी और जानना चाहा कि वह क्यों चली जाना चाहती है ? कहाँ जाना चाहती है ?

किन्तु वह क्या उत्तर दे ? दिगन्तके उस पार जो विश्व है, घण्टीकी टुन-टुनमें जो वाणी है, उसका मर्म उसके साथ विवाहके लिए उत्कण्ठित क्रोधसे भरे तरुणको वह कैसे समझाये ? अन्तमें उसने नृत्य करते-करते उसका क्रोध पानी कर दिया। नृत्यसे सम्मोहित होकर वह सो गया। जब वह जागकर उठा तब तक वह जा चुकी थी। और अब वहाँसे लौटना सम्भव न था। इस मरुपारके गाँवमें फिर लौटकर वह न आई। ईरानी मरु प्रान्तरकी प्रेम-विह्वला किशोरियाँ अपने हास्य और नृत्यकी लहरोंमें मिलकर कहाँ चली गईं। फिर उनकी व्याकुल कर देनेवाली रंग-विरंगी पोशाकें नहीं दिखाई दीं।

कवि सादीने ठीक ही लिखा है—

अरे धीरे चलो धीरे चलो कारवाँ, मैं अशान्त हूँ,
मेरे हृदयको मन चोर लेकर चला गया है।

शरीर और मन पृथक् कैसे किये जायँ
अपनी आँखोंसे जिसे देखा है, मेरा मन अपना नहीं रहा।

सच है मेरा मन भी मेरा नहीं रहा।

व्याकुल होकर अत्यन्त आत्मीय भावसे ग्रामवधुओंसे मैंने एक खरा देहाती गीत गानेको कहा—ऐसा गीत सुनाओ जो केवल तुम्हीं लोग इस मरुभूमिके पार श्यामल वन प्रान्तरमें गाती हो और जो आजकी सभ्यताके पालिश किये शहरोंकी बैठकमें गाया न जा सके।

घूमकर देखा कि ठाकुर साहब उन्हें मेरा आशय समझानेका प्राण-पणसे इशारा कर रहे हैं। उनका चेहरा देखकर ऐसा लगता था कि मानो कुछ मना करना चाहते हों किन्तु उनकी आँखोंसे किसी बातका पता नहीं लगता था।

अन्तमें उन्होंने केवल रामगोपालजीका नाम लिया। समझा, रामगोपाल-जी राजधानी दिल्ली वालोंके लिए किस तरहके गीत या कविताकी फ़र-मायश करेंगे। उन्होंने चारणोंके मुखसे मुझे दु:साहसी राठौर वीर मार-वाड़के राजा जसवंत सिंहकी लिखी कविता सुनवायी थी।

मुख ससि वा ससि सों अधिक, उदित जोति दिन-राति।
सागर ते उपजी न यह, कमला अपर सोहाति॥
नैन कमल ये ऐन हैं, और कमल केहि काम।
गमन करत नीकी लगै, कनक लता यह बाम॥

मस्तक हिलाते हुए मैंने कहा—साधु, साधु। औरंगज़ेब जिसके भयसे सदा अस्थिर रहा और अन्तमें अफ़ग़ानोंको क़ाबू करनेके लिए उन्हें काबुल भेजकर मरवा डाला। बहुतोंका विश्वास है कि दिल्लीश्वरने विष खिलवा-कर मरुभूमिके काँटेको उखाड़ फेंका था। उसी वीरकी कविताने मुझे मुग्ध कर लिया। किन्तु इनकी कवितामें और समसामयिक पुरानी बंगाली कविताके भाव और भाषामें अधिक भेद नहीं है। इसके अतिरिक्त इस

कविताका उपभोग तो दिल्लीमें रहकर भी किया जा सकता है। इसलिए मैं कोई नई चीज़ चाहता था।

तभी बहुत सुन्दर एक कविताका डूयेट शुरू हुआ।

बीकानेरके राजाके भाई पृथ्वीराज अकबरके समसामयिक थे। वे मुग़ल दरबारमें रहते थे। उनमें जैसी वीरता और काव्य-प्रतिभाका मेल था वैसा अन्य किसीमें नहीं था। इन्होंने ही अकबरकी सभासे मेवाड़के महाराणा प्रतापसिंहको एक ऐसी कविता लिख भेजी थी कि उसे पढ़ते ही महाराणाने अकबरकी वश्यता अस्वीकार कर दी थी। वे पुनः नये उत्साहसे युद्ध करने लगे थे और अन्तमें मेवाड़को पुनः जीत भी लिया था।

इसी वीर कवि पृथ्वीराजने स्त्रीकी मृत्यु हो जानेके बाद कई वर्षों बाद पुनः विवाह किया। कहावत भी है कि **"वृद्धस्य तरुणी विषम्।"** किन्तु कविने इस विषको **"प्रियशिष्या ललिता कलाविधौ"** कर अमृत बना लिया था। जैसलमेरकी रावल कन्या चम्पा देवी और उनके स्वामी पृथ्वीराजने डिंगल भाषामें एक अमर काव्य "रुक्मिणी मंगल" की रचना की। इसे रामगोपालजीने मुझे सुनवाया था।

एक दिन पृथ्वीराजने अपनी दाढ़ीसे एक सफ़ेद बाल निकालकर तरुणी स्त्रीकी दृष्टि बचाकर फेंक दिया। किन्तु पीछे खड़ी चम्पाने यह देख लिया और वह हँसने लगी। पृथ्वीराजने दर्पणमें उसके हँसते हुए मुखको देखकर कहा—

> **पीथल धोला आवियां, बहुली लागी खोड़।**
> **पूरे जोबन पदमणी, ऊभी मुख मरोड़॥**
> **पीथल पली टमुक्कियां, बहुली लग गई खोड़।**
> **स्वामीनी हांसा करे, ताली दे मुख मोड़॥**

ऐसी रसालू अथ च व्यथा भरी कविता सुनकर स्वामी पीथल अर्थात् पृथ्वीराजके मनकी ग्लानि मिटानेके लिए चम्पाने तुरन्त ही कविता रचकर उत्तर दिया :—

प्यारी कहे पीथल सुनो, घोलां दिस मत जोय।
नरां नाहरां डिगमरां, पाकाही रस होय।।
खेड़ज पक्का घोरियां, पंथज गउधां पाव।
नरां तुरंगा बनफला, पक्कां पक्कां साव।।

भरा यौवना पद्मिनी स्त्री स्वामीको सफ़ेद वाल उखाड़ते देखकर मुख फेरकर हँस पड़ी। स्वामीके मुखसे इस सम्बन्धमें कविता सुनकर स्त्रीने जो उत्तर दिया उसे ध्यानसे सुनिए। प्रियाकी वात सुनिए। मनुष्य, सिंह और दिगम्बर अर्थात् संन्यासी पकने ही पर अर्थात् परिपूर्ण होनेपर ही रससे पूर्ण होते हैं।

पृथ्वीमें और कहीं भी स्वामीने अपनी स्त्रीको काव्य-रचनामें शिष्या वनाकर ऐसा पुरस्कार पाया या नहीं मैं नहीं जानता।

किन्तु इस समय रामगोपालजी और उनकी सुसभ्य काव्यसुधा कहाँ है? मैं भीलवाड़ेके अन्तरमें वैठकर गीत और काव्यको शरावकी तरह पी रहा हूँ। इसीसे उनकी अपनी गोपन बातोंके गीतोंको सुनना चाहता था।

इस वार भीलनियोंके नेत्रोंमें लाखों विजलियोंकी चमक कौंध गई। मुसकराकर उन्होंने रंगीन घूँघटसे अपने मुँह ढक लिये। पैरोंमें पड़े पायज़ेब ताल देने लगे। शायद उसी गीतकी तैयारी हो रही है।

ये अर्धसभ्य अर्धवसनावृता कोकिलाएँ पञ्चम स्वरोंमें अपने जीवनका समस्त रस उडेलकर क्या गा रही हैं। किसी संयोग या वियोग वेदनाके अनुरागसे भरा गीत ही तो। मैं उस अनुरागको या होलीके गीतोंको, जिनमें उनके प्राणोंके साथ उनकी समस्त भावनाएँ वनों-वनोंमें गूँज उठती हैं, नहीं समझ सकता। मयूर और हरिणोंके झुण्ड हमें देखकर दूर चले जाते हैं, किन्तु उन गीतोंमें ऐसा क्या है कि वहाँ आकर चुपचाप टुकुर-टुकुर ताकते रहते हैं। वे भी शायद इन भीलनियोंके होलिका गीत कानोंसे सुनकर

विमोहित होकर ठिठकेसे खड़े रह जाते हैं। आज पृथिवीमें कहीं भी मयूर और हरिण गाना सुनकर खड़े होते हैं ? इस बीसवीं शताब्दीमें ? इस आणविक बमके बाज़ारमें ?

इन गीतोंकी कथा क्या हैं ? यदि हो सकता तो होमरसे विनती करता कि इन गीतोंके आवेगको भाषा दें, कालिदाससे अनुनय करता कि इन गीतोंकी झंकारको रूप दें। इन गीतोंकी कथा क्या है ?

भीलनियोंके प्रियतमोंकी देहोंपर फागका रंग चढ़ा हुआ था। उनकी प्रेमिकाओंने छोड़ा था। किन्तु कारपर किसने रंग छोड़ा था किसीने स्वीकार नहीं किया। इधर उनके शरीरोंपर फागके लाल रंगके स्पर्शसे उनके मनोंमें दावाग्नि सुलग उठी थी। उनके समस्त शरीरमें उनकी समस्त इन्द्रियोंमें। यह अग्नि शान्त कैसे होगी ? अग्नि अपना आहार पानेके लिए सुलग रही थी।

इसके बाद क्या होगा ?

नहीं। उस अग्निकी आँचको सहन करनेकी क्षमता मेरी लेखनीमें नहीं है। क्षमा चाहता हूँ।

: ८ :

फ़रांसीसी सज्जनने शेरीका ग्लास आगे बढ़ाया। जयपुर महाराजके गेस्ट हाउसमें उनसे परिचय और ख़ूब जान-पहचान हो गई।

राजस्थानके राजपूती वातावरणमें इसे केवल सामान्य शेरी कहना राजवाड़ेकी अमर्यादा करना होगा। मैंने मनमें सोचा कि यह सवाई राजाकी ओरसे आदरसे दिया हुआ आमन्त्रण पात्र है। भेद केवल इतना है कि अर्ककी जगह शेरी है।

हाय ! अब युद्धक्षेत्रमें जव-तव प्राण देनेका समय नहीं रहा इसीसे सन्ध्याके शान्तिवारि शेरीसे आजकल यथेष्ट काम चला लिया जाता है ।

किन्तु धन्यवादके साथ उसे सविनय लौटा दिया । मैंने कहा कि मोरलिस्ट होनेके कारण इसे नहीं लौटा रहा हूँ । इस रससे दास गोविन्द वञ्चित है । किन्तु आप इसे अवश्य पियें । मैं अपने मित्रोंके 'सामाजिक मात्रा' में पानानन्द करनेपर कोई आपत्ति नहीं मानता और उन्हें प्रसन्न देखकर स्वयं भी अत्यन्त प्रसन्न होऊँगा ।

इन सज्जनके नेत्रोंमें दुष्टता-भरी मुसकान और मुखपर रंगरसकी आभा आ गई । वोले—रोममें रहकर रोमन लोगोंकी तरह आचरण करना होगा ।

हँसकर उत्तर दिया—वह केवल रोम हीमें होता है । किन्तु मेरा कहना यह है कि पेरिसमें रहकर ठीक आप लोगोंकी तरह चलनेकी चेष्टा करूँगा ।

उत्तर मिलनेमें देरी नहीं हुई ।—फिर तो ठीक है । राजपूतानेमें अफ़ीम शुरू कीजिए ।

आलोचना जम उठी ।

वावरने हिन्दुस्तानमें मुग़ल राज्य स्थापित किया था । वह तुर्क था और मुग़लोंके अत्याचारसे उसका पैतृक राज्य और सब सुख-शान्ति चली गई थी । अस्थिर होकर जिनके साथ वह जीवनभर जूझता रहा और अन्तमें हिन्दुस्तानमें जिस साम्राज्यकी उसने प्रतिष्ठा की इतिहासने परिहासकर उसका नाम रखा मुग़ल साम्राज्य ।

वही वावर अपने देशसे एशियामें कुछ भी न ला सका, लाया भी तो केवल अंगूर और खरवूजे । इस देशमें तभी ये पहिली वार आये । उसका प्रपौत्र जहाँगीर तम्वाकू लाया । किन्तु अफ़ीम कौन लाया यह कोई नहीं जानता । अफ़ीमके वग़ैर पुरातन युगके राजपूतोंके चरित्र और जीवनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती ।

राजस्थानके कुछ विदेशी और घर-भेदी विभीषणोंने पीठ पीछे यह बतलाया कि इस अफ़ीमके सामरिक नशेमें चूर होकर ही तो राजपूत वीरता दिखाते थे। किन्तु यह परनिन्दाकी बात है। राजपूतोंकी वीरता उनके हृदय और गुणोंके कारण थी। बाहरकी मादकताका उससे कोई सम्बन्ध नहीं। उनकी वीरताकी कहानियोंने दूसरोंको मादकता दी है किन्तु मदिरासे उसका जन्म नहीं हुआ है। शस्य, मूल और फलोंसे राजपूत लोग अर्क़ तैयार करते हैं और अफ़ीमके फूलसे अफ़ीम। मतवाला पात्र उनके यहाँ चिरकालसे सामाजिक अनुष्ठान रहा है। अमल अर्थात् अफ़ीमका प्याला अभ्यागतको और राखी बन्धन आश्रितको वे देते रहे हैं।

वंशके कुल प्रदीपके जन्मपर सबको अफ़ीम दी जाती है। कोई ख़ुश-ख़बरी पानेपर घरमें सबसे बड़ा पात्र लाया जाता है और जलके साथ अफ़ीम घोली जाती है। और ख़ूब अच्छी तरहसे छानकर वह पेय पीनेके लिए तैयार किया जाता है।

मन्दिरके चरणामृतकी तरह सब लोग अञ्जलि भरकर अमल पीते हैं। बाहरके लोग यह समझ जाते हैं कि इस घरमें कोई विशेष पर्व है।

अरबके बद्दुओं और राजपूतोंकी शपथ और शरणागतोंको आश्रय देनेकी रीति ऐतिहासिक काल ही से प्रचलित है। बातके लिए प्राण दे देने-की तुलना पृथिवीमें और कहीं नहीं मिलेगी। राजपूत जिससे पगड़ी बदल लेते हैं, या जिसके आगे अपना दाहिना हाथ बढ़ा देते हैं या जिसके साथ अफ़ीम खा लेते हैं उसको दिये हुए वचनोंके लिए प्राण दे देंगे किन्तु मान नहीं खोयेंगे।

इस युगमें अफ़ीमके वे दिन नहीं रहे। राजपूतोंके भी वे दिमाग़ नहीं रहे। अपने सन्ध्याके साथीके साथ इस युगकी बातें होने लगीं। उन्होंने नालिश करते हुए कहा भारतवर्षमें सामाजिक मेल-जोल, भावोंके आदान-प्रदान और सांसारिक सौहार्द्रका बड़ा अभाव है। जिस देशका धर्म इतना

उदार है, जिसकी धाराएँ दिशाओं-दिशाओंमें वह रही है, जिस देशके मनुष्योंका मन इतना कोमल है, उस देशका समाज इतना कठिन क्यों है ? वहाँका संसार इतना कठोर क्यों है ? पूजामें, पर्वोंमें, उत्सवोंमें तो इतना मेल-जोल, इतना वन्धु भाव। किन्तु प्रतिदिनके जीवनमें लोग कछुएकी तरह अपने खोलके भीतर क्यों लुक जाते हैं ? उनके अपने जीवनमें इतनी असामाजिकता क्यों है ?

किन्तु मेरी इच्छा वर्तमान युगमें आनेकी बिलकुल नहीं थी। जिसे रोज़ आँखोंसे देखता हूँ, अपने चारों ओर अनुभव करता हूँ उसे किसी समय भी सोचा-विचारा जा सकता है। उसकी जाँच भविष्य करेगा। मैं वर्तमानमें अतीतको अनुभव करना चाहता हूँ। वर्तमानसे घड़ी दो घड़ीके लिए निष्कृति पा जाना चाहता हूँ।

मैंने कहा—हमारे ऊपर असामाजिकताकी नालिश कोई नई नहीं है। पाँच सौ वर्ष पूर्व मुग़ल साम्राज्यके प्रतिष्ठाता वावरने भी इसे लक्ष्य किया था। अपनी आत्मजीवनीमें उसने लिखा है कि प्रशंसा करने लायक़ आराम हिन्दुस्तानमें वहुत कम है। यहाँ वन्धु-वान्धवोंका संग-सुख, निष्कपट भावसे मेल-जोल या अन्तरंग भावका आनन्द क्या होता है, इसे लोग नहीं जानते हैं। इन लोगोंके व्यवहारमें भद्रता नहीं है, आचारमें सहानुभूति नहीं है और विचारमें दूसरोंके मनको देखनेका कोई प्रयोजन नहीं है।

इस युगमें भी विदेशी हमारे सम्बन्धमें वही वात सोचते और कहते हैं।

सन्ध्याके मित्रने वाधा देते हुए कहा—किन्तु वावर तो इस देशमें शत्रु होकर, आक्रमणकारी होकर आया था। वह यहाँके लोगोंके मन और सामाजिकताकी वातें इतनी जल्दी कैसे जान सकता था ?

उत्तर अत्यन्त सहज था।

तीक्ष्ण वुद्धि-शक्तिसे उसे इन वातोंको समझनेमें देरी नहीं लगी। वावरके जीवनकी सबसे वड़ी घटना थी फ़तेहपुर सीकरीमें राणा सांगापर

विजय। मेवाड़के राणाके साथ सेना और सामन्त वावरसे कहीं अधिक थे। यहीं केवल एक बार राजपूतोंने विदेशी शत्रुके विरुद्ध संघवद्ध तैयारी की थी। राणा सांगाने जो संघ खड़ा किया था, उसके विरुद्ध वावरमें खड़े होनेका ज़ोर नहीं था। तब भी राणा सांगाकी हार हुई। हिन्दुओंकी हार वीरताके अभावके कारण नहीं हुई, उनकी हार हुई मैत्रीके अभावके कारण, विश्वासके अभावके कारण।

केवल गोला-बारूदके विक्रमकी चोटसे नहीं, किन्तु घुल-मिलकर एक प्राण होकर युद्ध करनेके अभावके कारण।

फ़तेहपुर सीकरीके युद्धके सम्बन्धमें बावरने राणा सांगाकी सेनाके सम्बन्धमें लिखा है कि सांगाके अश्वारोही दलमें उसका केवल तृतीयांश ऐसा था जिसने आगे चलकर प्रभु-भक्तिका परिचय दिया। सेनामें अधिक-तर भाग शृंखलाहीन लोगोंका दंगल था, जिन्होंने सांगाको शायद कभी भी अपना नेता स्वीकार नहीं किया था। राजपूत-संघ सांगाके अधीन एकत्रित अवश्य हुआ था, किन्तु वह एकताबद्ध नहीं था। एकत्र और एकता एक ही वस्तु नहीं है।

इस युद्धमें उसका सबसे वड़ा प्रमाण दिया एक हिन्दू राजाने। उस समय वावरकी सेना भयके मारे असहाय और पंगु होकर भागने लगी थी और बाबरने कई तरहसे चेष्टा करके उनमें पुनः उत्साह और साहस भरनेकी चेष्टा की थी। ठीक इसी समय राणा सांगाके इस विश्वासघातक मित्रने समझाया कि मुग़लोंपर हमला करनेकी कोई ज़रूरत नहीं है। उसने यह सोचकर ऐसे सुवर्ण सुयोगको छोड़ दिया कि बावर उसके साथ सन्धि कर लेगा। प्रायः एक मासकी अवरुद्ध अवस्थामें रहनेके बाद जब वावरने युद्धका नाम लिया तब सन्धि-प्रस्ताव करनेवाले राजा शिल्लादिने अपनी समस्त सेनाके साथ जो मध्य भागमें सबसे आगे थी, आगे वढ़कर वावरका साथ दिया।

भारतके इतिहासमें केवल एक जयचन्द ही नहीं है। शताब्दीके बाद

शताब्दियों तक बहुत-बहुत संख्यामें उन्होंने अपनी अक्षय कालिमासे स्वदेश-का मुँह काला किया है।

किन्तु सांगा और बाबरके व्यक्तित्वकी तुलना करनेपर युद्धके फला-फलका कारण उसके बीच हीमें खोजनेपर मिल जायगा। सांगा क्रोधी और अहंकारी थे। उनका आधिपत्य शौर्य्य था, सख्य नहीं। वे वीर थे, किन्तु किसीके मित्र नहीं। उनके सामन्तोंमें वश्यताका भाव था, स्नेहका नहीं। उनके व्यक्तित्वमें प्रभाव था, किन्तु प्रीति नहीं थी।

हिन्दुओंके स्वदेश प्रेमके पीछे खूब परिष्कृत दृढ़ साधना नहीं थी। युद्ध करना केवल क्षत्रिय जातिका काम था—वह भी केवल राजाके लिए और सामन्तशाहीमें बाध्य होनेंके कारण। वही राजा यदि क्रोधी और अहंकारी हुआ तो सेना किसके लिए लड़े? रक्त किसके लिए बहावे?

दूसरी ओर बाबरके बारेमें भी विचार कीजिए। उसके अन्यान्य अस्त्र और रणकौशलकी सुविधाके अतिरिक्त उसके पास जो बड़ा गुण था वह प्रत्येक नायक और सेनापतिके लिए बहुत बड़ी वस्तु है। वह दिलका बड़ा साफ़ था। मित्र वात्सल्य उसका उत्स था और उसके समस्त कार्य सहानु-भूतिसे संचारित होते थे।

उसके चरित्र-माधुर्यकी एक कथा है।

इसलाममें शराब पीना वर्जित है। किन्तु मध्य एशिया और ताता-रिस्तानके मुसलमानोंमें शराबके बग़ैर कोई उत्सव ही नहीं होता। शराब उनका प्रतिदिनका विलास है। तब भी बाबरने कई वर्षों तक शराब नहीं छुई, किन्तु उसने अपने बन्धु-बान्धवों और अन्यान्य उपजातिके सरदारोंके आनन्दमें कभी बाधा नहीं दी और विरक्त बोध भी नहीं किया।

एक दिन पूर्वपुरुष तैमूरके वंशकी प्रधान शाखा मिर्ज़ा वंशके लोगोंका निमन्त्रण पाकर वह उनके तारेबख़ाने अर्थात् प्रमोद भवनमें गया। खानेके बाद पीना शुरू हुआ। वहाँ खानेके बाद निमंत्रित लोग तरल आवाहन आरम्भ करते हैं। और प्याले-पर-प्याले बार-बार इस तरह खत्म किये

जाते हैं कि लगता है कि इसके बग़ैर उनके प्राण नहीं बचेंगे। और इसी भावनासे वे लोग पीते हैं। मिर्ज़ाने बाबरसे जमातमें शरीक होनेके लिए बार-बार अनुरोध किया। एक बार अच्छी तरहसे मस्त होकर देख तो लिया जाय कि कैसा लगता है, यह लोभ बाबरके मनमें था और इसे उसने स्वीकार किया। उसने सोचा कि इस बाधाकी नदीको पार करके देखना चाहिए कि उस पार कौन-सा सुख अपेक्षा कर रहा है। लड़कपनमें उसने अपने चारों ओर लोगोंको खूब कसकर पीते देखा था किन्तु कभी प्रलोभन अनुभव नहीं किया। यहाँ तक कि जब उसके पिताने उससे मद पीनेका अनुरोध किया था तब भी वह राज़ी नहीं हुआ था। मिर्ज़ा इस बातको जानते थे, इसीसे उन्होंने अधिक ज़ोर नहीं दिया।

किन्तु कुछ दिनों बाद फिर एक उत्सवका आयोजन किया गया। सबसे बड़े मिर्ज़ाने अपने विख्यात बाग़-ए-जहान्‌के प्रमोद भवनमें बाबर और संगीसभासदोंको निमन्त्रित किया। उसने देखा कि उसके साथी लुक-छिपकर उसकी नज़र बचाकर एक-एक करके चले जाते हैं और पीकर सभामें बैठ जाते हैं। इतनी सावधानी बरतनेकी कोई खास ज़रूरत भी न थी। क्योंकि इस तरहके सामाजिक भोजोंमें चलते नियमके अनुसार पीनेमें कोई बाधा न थी। बाबर झुक रहा ही था। उसने भी कोई आपत्तिका कारण नहीं देखा। जो हो इस उत्सवमें आपत्तिके जो कुछ भी कारण रहे हों दूर हो गये।

पान, बीड़ी-सिगरेट तकसे जो अनभ्यस्त हो उसके मुखसे पीनेकी कहानी सुनकर फ़रांसीसी मित्रको बड़ा मज़ा आया। उन्होंने अनुरोध किया कि ऐसी ही एक-आध कहानी और सुनाई जाय।

मेरी ओरसे कोई आपत्ति न थी। युद्धके बाज़ारमें दुर्लभ काकटेल पार्टीमें मैं ही एक ऐसा योग्यतम मित्र था जिसके हाथमें वाइनसेलारकी चाभी निश्चिन्ततापूर्वक सौंपी जा सकती थी।

एक वार वावरको जूड़ीज्वर हो गया। दो दिन तीन दिन छोड़कर ज्वर आ जाता था। शिरा काट कर रक्त वाहर निकाला गया। एक सौ वर्ष पूर्व अमेरिका तकमें यह सब वातें ठीक चिकित्साकी मानी जाती थीं। इस चिकित्साके बाद भी ज्वर पारीसे आता रहा। एक बार तेज़ ज्वर चढ़कर उतर जाता था और फिर आता था। हाय, उन दिनों कोई सर्वज्वर-हर वटिका या मलेरिया मिक्सचरकी हुक्मी दवा ईजाद न हुई थी। हक़ीमने नर्गिसके फूलोंकी रेणु मिलाकर मदिरा दी, किन्तु मलेरियामें कमी नहीं आई।

इसी समय एक प्रिय मित्रने, आजकल जिसे 'ड्रिंकपार्टी' कहते हैं वही देनी चाही। वावर जानता था कि हँसनेमें समस्त संसार उसका साथ देगा किन्तु रोनेमें वह निःसंग रहेगा। उसने लड़कपन ही से अशान्ति युद्धविग्रह, पैत्रिकराज्यका हरण देखा था। वह दूसरोंपर अपने मनोभाव लादना नहीं जानता था। यह भी समझता था कि इन्हीं सुख-दुःखके साथियोंके साथ अनुकूल पवन पानेपर दरियाके वीचमें पाल तानकर वह चला है। इसी समय हिन्दुस्तान और अफग़ानिस्तान प्रान्तोंमें भारतीय और अफग़ानोंने विद्रोहकर उसके प्रतिनिधि शासनकर्त्ता हिन्दूवेग़को भगा दिया था। तव भी उसने इस उत्सवके लिए सम्मति दे दी। सभी लोग उसकी तरह चुपचाप मुर्दादिल लेकर पड़े थोड़े ही रहेंगे।

वावरने कहा—हमारे मित्र और संगी-साथी आनन्दमें आत्महारा होंगे और मैं वहुत गम्भीर होकर चुपचाप वैठा रहूँगा यह कभी नहीं हो सकता। तुम सव लोग आनन्द करो और मेरे पास वैठो। मैंने वहुत अरमानोंसे चिनार वाग़में एक सूरतख़ाना वनवाया है। वहाँ वैठकर यह उत्सव होगा। उसने उसी समय एक कविता वनाई और मित्रोंके पास भेज दी, जिसका भाव इस प्रकार हैः—

"हे मित्रो, तुम इस सुन्दर गुलाववाग़में उत्सव मनाकर खब मदिरा

पान करो जिससे आपसमें सौहार्द्र-सुधा जग उठे। यद्यपि मैं इससे वंचित हूँ परन्तु परमात्मासे शत-शत प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हारा कोई अनिष्ट न हो।

दिल्लीके नेशनल अर्काइव्ज़ने बाईस हज़ार रुपये खर्च करके बाबर-की आत्मजीवनीकी एक कापी अपने यहाँ रखी है। कई रंगों और सुवर्ण अंकित दो सौ तिरासी प्राचीन छवियोंसे सज्जित इस पुस्तकमें इस कविता-की मूल रुबाई है।

किन्तु बाबर था योद्धा। युद्ध करना उसका नशा था, केवल कविता-की बड़ाईसे उसके अरमान कैसे पूरे होते? अस्वस्थ अवस्थामें ज्वरके रहते भी वह खच्चरोंसे खींचे जाने वाले चौदोला तख्तए-रवाँपर बैठकर मित्रोंके बीचमें हाज़िर हो गया।

मित्र चिरकालके लिए उसके वन्दे हो गये। इन्हीं मित्रोंने बाबरके फतेहपुर सीकरी युद्धमें प्रमुख भाग लिया था।

उन्होंने राणा सांगाकी विशाल सेनाको देखकर और राणाके विक्रमकी चर्चा सुनकर काबुल कितनी अच्छी जगह है और हिन्दुस्तानका स्वास्थ्य कितना खराब है इस सम्बन्धमें गम्भीर आलोचना करके पीछे हटनेका रास्ता ठीक कर रखा था। फील पैरपर विषफोड़ेके समान मुहम्मद शरीफ़ नामका एक ज्योतिषी भी उसके साथ था। उसने गणना करके बतलाया था कि मंगल ग्रह पश्चिममें निकला है इससे जो कोई उल्टी दिशासे अर्थात् दिल्ली आगराकी तरफ़ पूर्व दिशासे आक्रमण करेगा वह हार जायगा।

बाबर उस समय चारों ओरसे फौजको सजाकर गोलन्दाज़ों और बरक़-न्दाज़ोंको ठीक तरहसे काम करनेकी शिक्षा दे रहा था। चारों ओर लूटपाट करनेके लिए सबको उत्साह देनेकी चेष्टा कर रहा था।

किन्तु किसीसे कुछ भी नहीं हुआ।

अन्तमें एक दिन घोड़ेपर बैठ कर सेनाकी परीक्षा करते-करते उसने सोचा कि बड़े लाभके लिए बड़ा त्याग करनेकी आवश्यकता है। हिन्दू लोग भी गयामें पिण्ड देनेके बाद 'सुफल' पानेके लिए किसी फलका त्याग करते हैं। किन्तु वह मनको बहलानेके लिए होता है। असली त्याग उनके बीचमें कुछ भी नहीं होता है। क्योंकि जो जीभ आम, कटहलके स्वादकी अभ्यस्त है उस जीभको यह कहकर कि इस जीवनमें निवौरी नहीं खाऊँगा त्याग कहाँ हुआ।

किन्तु बावरने वास्तवमें एक बड़ा त्याग किया। मदिरामें उसे प्रथम प्रणयकी मादकता मिलती थी। उसी मदिराको बिलकुल छोड़ देनेकी उसने प्रतिज्ञा कर ली। ठीक उसी समय काबुलसे उसका एक मित्र आया था। बावरकी फरमायश गज़नीकी सबसे बढ़िया मदिरा की थी। ऊँटकी पीठों-पर लद कर उसके साथ पाँच सौ आदमी आये थे।

साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व गज़नीसे आगरे तक ऊँटोंके कारवाँ चलते थे। दुश्मनोंके इलाक़े, खैबरपासकी लूटमार और पंचनदको पार कर महीनों बाद कहीं वे यथास्थान पहुँच पाते थे। इस युगमें तो पृथिवीका कोई भी स्थान अगम नहीं रहा। जेट एरोप्लेनका कामेट तो सत्य ही में धूमकेतु है। परशियन कारपेटके आरामको उसने लात मार दी है और चन्द घण्टोंमें विलायतसे बम्बई पहुँचता है।

उस युगमें ऐसी मदिराका मूल्यांकन भी नहीं किया जा सकता था। विशेषकर बावर ऐसे पियक्कड़के लिए ऐसी मदिराका क्या मूल्य हो सकता था यह समझना कठिन है। किन्तु उसे भी बावरने छोड़ दिया। भगवान्-के नामपर छोड़ दिया। जितने सोने-चाँदीके प्याले, गिलास और अन्यान्य मदिरा पीनेके साज-सरंजाम थे उन सबको एकत्र कर उसने तुड़वा दिया। इतने बहुमूल्य टुकड़े किसी संसारी जनके हाथोंमें न पड़ जायँ इसलिए उन्हें दरवेशियोंको दे दिया गया। उसकी सोना-चाँदी बेंचकर ग़रीबोंके कामोंमें लगा दी गई। उस रात्रिको और उसके बादकी रात्रिको सब

अमीर, परिषद् और सेनाने एक-एककर मदिरा छोड़नेकी शपथ ली। समस्त मदिरा ज़मीनपर फेंककर मिट्टीमें मिला दी गई। बादमें उस ज़मीनपर भिखारियोंके लिए एक मकान बनवा दिया गया।

उसके बाद उसने एक फरमान लिखकर सब लोगोंमें वितरित किया। "मैं उस क्षमा करने वालेकी स्तुति करता हूँ। वह अनुताप करने वालेको और गुनाहोंसे माफ़ी माँगने वालेको क्षमा करता है।....हे मेरे स्रष्टा मैंने दुश्मनको जीत लिया है। अपने बन्दोंमें मुझे भी ले लो क्योंकि मैंने अपने मनमें लिख लिया है कि पहिली बार मैं सच्चा मुसलमान हुआ हूँ।"

उसके अमीर और वज़ीर इत्यादि डरके मारे सिर नीचा किये बैठे थे। वे राणा सांगाको राणा शक कहते थे—उनके मनमें इतनी शंका समा गई थी। राजपूतोंके विक्रमकी चोटसे बाबरके हाथसे कई ज़िले और परगने निकल गये थे। मनकी ऐसी अवस्थामें जिस-तिसको लेकर युद्ध नहीं किया जा सकता। उसने सबको एक स्थानपर एकत्रित कर अपने मनकी बात बतलाई : अपने हृदयपर हाथ रख कर उसने समझाया कि मृत्यु तो अमर होनेका मार्ग है। फिरदौसीके शाहनामासे उसने यह कविता सुनाई—

यदि मर भी गये, कीर्ति प्राप्त कर,
सन्तोष भारी होगा हमें।
मृत्यु पायेगी केवल मेरी देहका स्वामित्व
कीर्ति किन्तु सर्वदा रहेगी हमारी॥

उसने यह भी कहा कि परमेश्वरने ऐसे सौभाग्यकी सूचना मुझे दी है। अगर तुम लोग युद्ध करते-करते मरोगे तो शहीद हो जाओगे। और यदि बच गये तो गाज़ी बनकर अल्लाहकी ओरसे और जयलाभ करोगे।

इस युद्धका क्या फलाफल हुआ होगा यह आप इतिहासके विद्यार्थी न होनेपर भी इसी समय अपनी बुद्धिसे समझ लेंगे।

केवल इतना ही नहीं।

राणा सांगा घायल होकर और युद्धमें हारकर मेवाड़के पहाड़ोंकी ओर चले गये। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि विना जीते चित्तौड़ नहीं लौटेंगे। किन्तु वे फिर चित्तौड़ लौट न सके। जब उन्होंने सेना सामन्त जमाकर युद्धकी तैयारी की तब उनके सरदारोंने युद्धके बाद युद्धकी हैरानीसे मुक्ति पानेके लिए सांगाको विष खिलाकर मार डाला। देश चूल्हेमें जाय हमें तो मौज मिली।

राणा सांगा ही केवल एक ऐसे राजपूत राजा थे जिन्होंने समग्र सम्मिलित राजस्थानका स्वप्न देखा था। सबको साथ लेकर उन्होंने विदेशी विधर्मी शत्रुसे युद्ध करना चाहा था। किन्तु दूरदर्शी बाबर यह समझ गया था कि हिन्दुओंका यह स्वप्न पूरा नहीं हो सकता। उसने लिखा है कि जो बड़े-बड़े वंशके राजा, राय, सरदार, सेनापति इस युद्धमें सांगाके साथ योग देने आये थे, उन्होंने पहिले किसी युद्धमें उसकी अधीनता स्वीकार नहीं की थी। उन्होंने अपनी मर्यादाको इतना महत्त्व दिया कि उसके साथ सद्भाव तक नहीं रखा। राठौर, चौहान कछवाहा वंशके राजा शिशोदिया वंशके राजाके सामने सिर झुकाना नहीं चाहते थे। इसलिए हिन्दूपति राणा सांगा केवल नाम ही का हिन्दूपति था।

केवल वीरत्व अथवा हँसते-हँसते जान दे देनेकी क्षमता लेकर युद्ध नहीं जीते जाते। इसीसे राजपूत वीरता केवल कवियोंकी अमर कवितामें ही कीर्तिलाभ कर सकी। किन्तु शत्रुके सम्मुख युद्धमें अन्तमें वे सफल न हो सके।

अरिको छल या कौशलसे मारो। छल तो दूरकी बात है, हिन्दू शास्त्रकारोंने धर्मयुद्धमें उसे कोई स्थान नहीं दिया है। कौशल भी हमारा कुछ ऊँचे दरजेका नहीं है। राजपूत लोग व्यक्तिगत वीरतामें या कष्ट सहनेकी क्षमतामें तुर्क या पठानोंसे किसी मात्रामें कम न थे। राजपूत घुड़-सवार देशी या पहाड़ी छोटे घोड़ोंपर चढ़ते थे और उनके मुकाबलेमें

मुसलमान ऊँचे खुरासानी घोड़ोंपर बैठकर उल्काके वेगके समान आते थे। इन तेज़ और ऊँचे घोड़ोंपर बैठकर मुसलमान घुड़सवार हिन्दू सेनाओंका बार-बार छत्रभंग कर देते थे या हरा देते थे। राजपूतोंकी युद्धयात्रा एक रोमांस थी स्ट्रेटेजी नहीं। चमक-दमक खूब थी, कौशल और क़ायदा नहीं था।

इस तरहके धोड़ोंका उत्तर था हाथी। सिकन्दरके आक्रमणके समय राजा पुरुके हाथियोंने विजय-स्तम्भके समान दल-बल सहित आगे बढ़कर ग्रीकोंकी नाभिश्वास तक बाहर निकाल दी थी। किन्तु एक बार हाथियोंका डर चले जानेपर बर्छों और दूरसे तीर छोड़कर हाथियोंको अस्थिर कर सेनाको विश्रृङ्खल कर देना अत्यन्त सहज हो गया था।

हाथीकी पीठपर बैठकर राजा समस्त युद्धक्षेत्रको लक्ष्य कर सैन्य सञ्चालन करता था। किन्तु वह स्वयं भी शत्रु पक्षके लिए सहज और सुविधा-जनक लक्ष्य हो जाता था। बार-बार यह देखा गया है कि हिन्दू राजा या सेनापतिके ऊपर शत्रुसेना खूब दूरीसे भी अच्छी तरह निशाना साधकर तीर छोड़ती थी। राजा या महावत किसीके भी घायल हो जानेपर सेनाके बीचमें एक ऐसा हताश भाव छा जाता था कि जीता हुआ युद्ध भी भागकर छोड़ दिया जाता था। शून्य हौदा देखते ही सेना सोचने लगती थी कि अब किसके लिए युद्ध किया जाय। महावत या हाथीके घायल होनेपर चारों ओर ऐसा गोलमाल होता था कि स्वपक्षकी सेना तितर-बितर हो जाती थी। सिकन्दरके समयकी यह साधारण-सी शिक्षा तक हिन्दू राजाओंने नहीं सीखी।

और उन्होंने शत्रुके नूतन रण-कौशलके अनुसार अपनी युद्ध पद्धति भी नहीं बदली। बाबरके साथ तोपें थीं, गोलन्दाज़ थे और बरकन्दाज़ थे, जो वज्रके समान कठोर तीर बिजलीके समान बेगसे छोड़ते। बहुत दिनों तक फतहपुर सीकरीमें बाबरने अपनी कम सेनाको भी अच्छी तरह

लैसकर रखा था। जहाँ तोपें नहीं होती थीं वहाँ जितनी जरूरत होती थीं उतनी तोपें वह बहुत शीघ्रतासे भेजनेका प्रवन्ध कर देता था। तीरन्दाज़ोंपर शत्रुओंका आक्रमण सीधा न पड़ सके इसका वन्दोबस्त कर देता था। शत्रु किसी तरह उसके पास न आ जायँ इसकी व्यवस्था कर लेता था। और सेनापतिसे लेकर साधारण सैनिक तकको एक-सा विस्तर और जिरह-वख़्तर देता था—यह था इसलाम। उन्हें आगे बढ़ना ही होगा क्योंकि पीछे भागनेका रास्ता नहीं है। किन्तु राणा सांगाने इन सब वातोंको नज़रअन्दाज़ कर दिया। उनके पास सभी कुछ था। किन्तु केवल रणकौशल नहीं था इसीसे जव इनके अश्वारोही दलने सिमटकर व्यूह-रचना वनाई और शत्रुओंपर चढ़ाई की तो शत्रुकी तोपोंको सहज और वहुशः लक्ष्य मिल गये। शताब्दीके-वाद-शताब्दी यहाँ तक कि उन्नीसवीं शताब्दी तक राजपूत वीर इसी एक ही प्रथासे युद्ध करते रहे।

और हाथीने तो सवसे अधिक सर्वनाश किया। भारतीय चतुरंगमें हाथी बहुत वड़ा अंग है। उसके ऊपर बैठकर सैन्य-सञ्चालन किया जाता था और वावरके तीरन्दाज़ोंको दूरसे भी निशाना मारनेमें भूल नहीं हो सकती थी। राणाका एक नेत्र और एक वाहु पहिले ही युद्धमें जा चुके थे। इस वार उनके मस्तकमें तीराघात हुआ। भाग्यने इसी तरह राज-पूतोंके कपालपर कराघात किया है।

हिन्दुओंके सिद्धिदाता देवता हैं गणेश। स्थिर, धीर, अविचल। उनका मुख हाथीकी प्रतिच्छवि है। हाथी अचञ्चल है किन्तु अपरिवर्तनशील भी है। उसकी गतिमें है यति, यायावरतामें भरी है स्थावरता।

हमने उसके अन्तिम अंशोंको ही ग्रहण किया। सोना फेंककर आँचलको ख़ाली वाँध लिया। यही हमारा दुर्भाग्य है

हमने इतिहाससे कभी भी शिक्षा नहीं ली।

: ९ :

समुद्र-तटपर खड़े होकर सरदार पटेलने मन-ही-मनमें प्रतिज्ञा की कि हिन्दुस्तानके स्वाधीन हो जानेपर सोमनाथके भग्न स्थानपर नया मन्दिर बनेगा।

समस्त देशने उस पवित्र प्रतिज्ञाको स्वीकार किया।

सोमनाथकी कहानी ठीक राजस्थानकी, अर्थात् इस युगमें जो राजपूताना कहनेसे समझा जाता है, कहानी न होनेपर भी राजपूतोंकी कहानी है। राजपूतानेके साथ उसका घना सम्बन्ध है। कारण यह कि राजवाड़ा कहनेसे सौराष्ट्रको राजपूतोंके देशसे अलग करना ठीक नहीं होगा।

और राजपूतानेकी छातीको रौंदकर ही सोमनाथपर आक्रमण हुआ था। ग़ज़नीका सुलतान महमूद राजपूतानेके ऊँटोंपर बैठकर बीकानेर-अजमेरके रास्तेसे ही सोमनाथ पहुँचा था। राजस्थानमें उसे कोई बाधा नहीं मिली थी।

सरदार पटेलके समान और एक सरदारने भी इस मन्दिरके सम्बन्धमें दूसरी तरहकी एक प्रतिज्ञा की थी। दोनोंकी तुलना करके देखना होगा।

महमूदके लाड़ले पुत्रके जन्मके दिन अनेकों देवमूर्तियाँ तोड़कर उत्सव किया गया था और उसने प्रार्थना की थी कि भगवान् उसके पुत्रको भी ऐसी ही सुमति दे। पुत्ररत्नने राजा होनेपर शपथ खाई कि प्रत्येक वर्ष हिन्दुस्तानपर आक्रमण किया जायगा। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इन चतुर्वर्गोंमें तीनकी साध तो उसने हाथों-हाथ पूरी कर ली थी। चौथीके बारेमें उसका विश्वास था कि परलोकमें भी सुखकी डाली उसकी अपेक्षा कर रही है। महमूद और उसकी सेनामें उत्साहका अभाव नहीं था। इस देशके राजाओंकी दिग्विजय-यात्रा शरत्कालमें होती थी। उधर वे लोग भी

प्रत्येक शरत्‌में भीषण ठण्डे ग़ज़नीसे दलबल सहित हिन्दुस्तानकी आराम-दायक ठण्डमें कई मास काटते थे और गरमीमें ग़ज़नीकी ठण्डी हवा भोग करने चले जाते थे।

पंजाबके एक राजपूत राजा जयपालने एक बार भीषण युद्ध किया और सुलतानके आगे बढ़नेमें बाधा पहुँचाई। उसके प्रायः तेरह सौ वर्ष पूर्व जब कि मनुष्य सभ्यतामें आगे चलनेकी तैयारी कर रहा था, ग्रीक आक्र-मणकारी अलेकज़ेण्डरको ठीक इसी तरह पंजाबके एक राजा पुरुने भीषण बाधा पहुँचाई थी।

पुरु और जयपाल दोनों ही बन्दी किये जाकर शत्रुपक्षके राजाके सामने शृंखलाबद्ध अवस्थामें खड़े कर दिये गये।

अलेकज़ेण्डरने पुरुसे पूछा—बन्दी, तुम हससे कैसे व्यवहारकी आशा रखते हो ?

पुरुने उत्तर दिया—जैसा व्यवहार राजाओंके साथ किया जाता है।

अलेकज़ेण्डर अवाक् होकर इस वीरकी ओर अपलक देखता रह गया।

पुरुने फिरसे निर्भय सिर ऊँचाकर और सीना तानकर कहा—राजाओंकी तरह। यही मैंने कहा है,और इसीमें समस्त बातें आ जाती हैं।

इसके ठीक तेरह सौ सत्ताईस वर्षों बाद जयपाल बन्दी अवस्थामें महमूदके सामने लाया गया था। ऊतबी नामके एक ऐतिहासिकने 'तारीख-ए-इरामीन' पुस्तकमें लिखा है कि 'अल्लाहका दुश्मन जयपाल, उसके लड़के, पोते, भांजे, सब सरदार और आत्मीय पकड़ लिये गये। उन सबको खूब कसकर रस्सीसे बाँधा गया और सुलतानके सामने लाया गया। जिन्होंने बदमाशी की थी या जिनको दुर्भाग्यका फल मिलना था, वे सब इस तरह रस्सीसे बाँधकर लाये गये जैसे नरकमें ले जाये जाते हैं। किसी-किसीके हाथ पीठके पीछे बाँध दिये गये थे। किसीका गाल पकड़कर सामने लाया गया था। किसीको घोड़ेके धक्के खिलाकर वहाँतक पहुँचाया गया था। जयपालके गलेसे बड़े-बड़े मोतियों और चमचमाते मणि-लालकी माला छीन

ली गई थी। उसके दाम दो लाख दीनार थे। ...अल्लाहने उसके दोस्तोंको इतना लूटपाटका धन दिया है कि उसकी कोई नाप-जोख नहीं की जा सकती और वह हिसाबसे बाहरकी चीज़ है। इनके बीचमें पाँच लाख सुन्दर पुरुष और नारियाँ भी थीं। उन्हें क्रीतदास बना लिया गया।'

जयपालसे यह अपमान सहन न हुआ। उन्होंने मुक्ति पाते ही चिताकी अग्निमें प्रवेश कर आत्महत्या कर ली।

उसके पुत्र आनन्दपालने उज्जयिनी, ग्वालियर, कन्नौज, दिल्ली, अजमेर प्रभृति राजाओंकी सहायतासे महमूदके विरुद्ध एक विराट् सेनाका समावेश किया। इस युद्धमें आगेके युगकी राजपूतनियोंके समान राजपूत-नारियोंने भी यथेष्ट सहायता दी थी। उन्होंने अस्त्र-शस्त्र जमा करनेके लिए अपने समस्त आभूषण बेच दिये थे। ग़रीब सैनिकोंके पहननेके लिए उन्होंने बिना पैसा लिये सूत तैयार कर कपड़ा बुना था।

इस युगके विश्व युद्धमें विलायती रंगत लिये आधुनिक दिल्ली, कलकत्ताके राजपथोंपर मिलिटरी मोटरें चलती हैं। ट्रक, मोटर साइकिल, जीप लेकर डिसपैचराइडर काम करते हैं। लाटभवनमें या किसी बड़े आदमीकी पत्नीके नेतृत्वमें ऊनी मोज़े और पुलओवर बुने जाते हैं। ये फ्रण्टपर जानेवाले सैनिकोंके लिए होते हैं। किन्तु डिसपैच राइडर होनेपर वे लोग स्मार्ट मिलिटरी यूनीफ़ार्म पहनते हैं। मोज़े और पुलओवर बिननेके पीछे समाचारपत्रोंमें तसवीर या कोई छोटा-मोटा ख़िताब या सुनहला-रुपहला न सही तो ब्रोंज़का कैसर-ए-हिन्द मैडल पानेकी सम्भावना रहती है। किन्तु उनसे गहना बेचनेकी बात की जाय तो ? नेवर, नेवर।

महमूद उस युद्धमें विजयी होकर गज़नी लौटा तो अतुलनीय धनरत्न साथ ले गया था। असंख्य मणिमाणिक्य, मुक्ता, अग्नि स्फुलिंगके समान चमकते या बरफ़में जमी मदिराके समान लाल चुन्नी, बेलकी ताज़ी लताके समान हरे पन्ने, अनारदानोंके समान वज़नी और उतने ही बड़े हीरे। इसके बाद मथुराका मन्दिर चूर्ण-विचूर्ण कर लूटा गया था। उसमें पाँच-

पाँच गज़की लम्बी ठोस सोनेकी पाँच मूर्तियाँ थीं जिनके नेत्र महामूल्य मणिके थे।

उस समय थानेश्वरको हिन्दुओंका मक्का सुनकर महमूदने उसे लूटने-का विचार किया। राजा आनन्दपालका भाई मन्दिर बचानेके लिए मह-मूदके पास विनती करनेके लिए गया। उसने कहा कि यदि मूर्ति ध्वंस करने ही में सुलतानको कीर्ति और पुण्य प्राप्त करनेकी लालसा हो तो वह तो इतने दिनों तक उसने अक्षय भावसे अर्जन कर लिया है। थानेश्वरका मन्दिर यदि छोड़ दिया जाय तो प्रत्येक वर्ष हिन्दू लोग उसे भारी नज़राना देनेके लिए तैयार हैं। निवेदनकारी भी उसे पचास हाथी और असंख्य मणिमुक्ता देनेके लिए प्रस्तुत हैं।

ऐतिहासिक फ़रिश्ताने लिखा है कि महमूदने उत्तर दिया—ईमानवालों (अर्थात् अल्लाहके विश्वासी लोग) का मज़हब कहता है कि जितने ही अधिक बुत विनष्ट किये जायँगे स्वर्गमें पुरस्कार भी उतना ही बड़ा मिलेगा। फिर थानेश्वर क्यों छोड़ा जाय।

इस बार गज़नीमें दो लाख बन्दी लाये गये। प्रत्येक सिपाहीको कई दास और दासी मिले। ऐसा लगता था कि गज़नी हिन्दुस्तान हीका एक शहर हो गया है।

सोमनाथका मन्दिर ध्वंस करते समय भी महमूदने ऐसा ही उत्तर दिया था। ब्राह्मणोंने निवेदन किया कि यदि मूर्ति अक्षत छोड़ दी जायगी तो महमूदको कई करोड़ मोहर उसके बदलेमें दी जायगी। तारीख-ए-आलफ़तमें लिखा है कि इस प्रस्तावपर महमूदके उमराव खुश होकर राज़ी हो गये थे और उन्होंने महमूदको समझानेकी चेष्टा भी की थी कि एक मूर्तिके बदले करोड़ों मोहरोंका मूल्य अधिक है। किन्तु महमूदने कहा कि क़यामतके रोज़ जब अल्लाह सबको बुलायेगा तब उस महमूदको नहीं बुलायेगा जिसने चन्द टकोंके लिए बुत बेच दी थी किन्तु उस महमूदको

बुलायेगा जिसने सबसे बड़े बुतको तोड़ा था। मुसलमानोंकी सबसे बड़ी साध यही है।

इतना कह कर महमूदने अपने हाथसे गदा उठाकर सोमनाथके ज्योतिर्लिंगको चूर्ण कर दिया था। उसके अन्दरसे इतने मणिमुक्ता मिले कि यदि ब्राह्मणलोग एक करोड़ सोनेकी मोहरें देते तब भी उन मणिमुक्ताओं-का मूल्य उनसे सौगुना अधिक होता।

आज हम उसी मन्दिर और सोमनाथके उसी ज्योतिर्लिङ्गकी पुनः प्रतिष्ठा कर रहे हैं। गुर्जर राजपूतोंके इतिहासमें सबसे बड़ी घटना यह हुई है कि इस असामान्य मन्दिरकी पुनःप्रतिष्ठामें जनसाधारणने मिलकर सामान्य चन्दा दिया है। उस दिन सोमनाथके मन्दिरकी रक्षाके लिए हिन्दुस्तानमें कोई भी खड़ा नहीं हुआ था। गज़नीसे गुजरातके मार्ग तक किसी भी हिन्दू राजाने युद्ध नहीं किया। किसी जन-जागरणने बाधा नहीं दी। दुर्ग भङ्ग कर जब महमूद मन्दिरकी दीवालके नीचे आकर खड़ा हुआ तब भक्तलोग भगवान्की आत्मरक्षाकी क्षमतापर निर्भर होकर अपने कर्त्तव्यकी इति-श्री समझ बैठे थे। उन्होंने मन्दिरके छज्जेपर खड़े होकर आक्रमणकारियोंका मज़ाक तक उड़ाया था। दूसरे दिन महमूदकी सेनाने भीषण युद्ध कर छज्जेको दखलकर भीतर प्रवेश किया। किन्तु युद्धमें क्लान्त हो जानेके कारण उस रात्रिको उसने मन्दिरपर आक्रमण नहीं किया। सारी रात हिन्दू लोग मन्दिरमें भीड़ किये और रोते-पीटते रहे। छाती पीट कर, नेत्रोंमें जल भर कर भगवान्को आत्मरक्षाके प्रति जागृत करनेके लिए पुकारते रहे।

किन्तु हाय! भक्त यदि स्वयं ही कुछ नहीं करेंगे तो भगवान् किसे सहारा देंगे।

प्रातःकाल होते ही गज़नीकी सेनाने आक्रमण किया। एक-एक करके मन्दिरके प्रत्येक मार्गपर हिन्दू लोग लड़ाई करके मरने लगे। मन्दिर-

के द्वार तक युद्ध हुआ। उस मन्दिरके सामने पचास हज़ार हिन्दू मारे गये थे।

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।"

इसे मैंने संस्कृत भाषामें सुना था किन्तु संस्कारवश भूल जाता हूँ। शताब्दीके बाद शताब्दी तक हमलोग बलहीन हो रहे हैं, हाथ जोड़ने लगते हैं और नतशिर होकर मरते हैं।

फिर भी हमने आत्माको सम्पूर्ण रूपसे हरा नहीं दिया है। शैतानके हाथोंमें बिक नहीं गये हैं।

पहियेके दोनों ओरकी तुलना करनेसे यह बात स्पष्ट हो जायगी। गुणग्राही मुसलमान ऐतिहासिकोंने जो लिख रखा है उसकी तुलना करके देखना होगा।

मुहम्मद ऊफ़ीने अपने 'जमाइउल हिकायत' नामकी पुस्तकमें प्रथम युगके मुसलमान राजाओंकी बहुत-सी कहानियों और आँखोंसे देखी हुई घटनाएँ लिखी हैं। उसमें हमें मुसलमानोंके प्रति हिन्दुओंके व्यवहारके सुन्दर उदाहरण मिलते हैं।

जिन दिनों महमूदने सोमनाथका मन्दिर तोड़ा था उन्हीं दिनों गुज़रातमें एक घटना घटी थी।

समुद्रके पार खंभात (काम्बे) शहरमें बहुतसे मुसलमान और अग्नि-उपासक रहते थे। अग्नि-उपासकोंके उसकानेपर एक बार हिन्दुओंने वहाँकी मसजिदमें आग लगा दी, अज़ानकी मीनार तोड़ डाली और अस्सी मुसलमानोंको मार डाला। उन दिनों मुसलमानोंका उस प्रदेशमें कोई राज्य या प्रभाव नहीं था।

मसजिदमें खुतबा पढ़नेवाले खातिबने राज-दरबारमें आकर नालिश करनेकी चेष्टा की। किन्तु राजाके सभा-सदस्योंने कोई नालिश नहीं सुनी। एक दिन जब राजा शिकार खेलने जानेवाले थे तब मार्गके एक वृक्षके

नीचे ख़ातिब उनकी प्रतीक्षा करने लगा। हाथीपर सवार होकर राजा जब वहाँ पहुँचे तब ख़ातिबने खड़े होकर हिन्दी कवितामें राजा तक नालिश पहुँचाई। राजाने तुरन्त ही ख़ातिबके देखने-सुननेकी व्यवस्था कर दी। और उसके बाद राजधानी अनहिल-पट्टन पहुँचकर मंत्रीसे कुछ दिनोंके लिए राजकार्य देखनेके लिए कहकर अन्दर महलमें विश्राम करनेके लिए चले गये।

किन्तु विश्रामके लिए नहीं विचारके लिए।

उसी रातको राजा खंभात शहरके लिए रवाना हो गये। साधारण सौदागरके छद्मवेशमें वहाँ पहुँचकर घूम-घूमकर उन्होंने सारी ख़बर जान ली। वे समझ गये कि मुसलमानोंपर अकारण ही अत्याचार किया गया है तथा उनकी हत्या की गई है। वे एक हँड़ियामें समुद्र जल लेकर राजधानी वापस आ गये और विचार-सभामें सब पक्षोंको बुलाया। जिन्होंने मसजिद नष्ट की थी उन्होंने अपनी कुकीर्तिको ढँकनेकी चेष्टा की। राजाने उन्हें समुद्र जलकी हँड़िया दी और जल पीनेको कहा। नमकीन जल किसीसे पिया न गया तब उन्होंने कहा कि सब धर्म समान हैं, अन्य धर्मावलम्बियोंके लिए वह ऐसे नमकीन जलके समान बेस्वाद है। किन्तु इस कारण वे दूसरे धर्मके ऊपर अत्याचार नहीं कर सकते।

उन्होंने घोषणा की कि उनकी सब प्रजा उनके लिए समान है और उनको आश्रय देना उनका कर्तव्य है। उन्होंने स्वयं पता लगा लिया है कि मुसलमानोंपर अत्याचार किया गया है। उन्होंने हिन्दू और अग्नि-उपासकोंके नेताओंको दण्ड दिया। मुसलमानोंकी मसजिद और मीनार फ़िरसे बनानेके लिए एक लाख रुपया दिया। और धर्म सम्बन्धी इस तरहकी नालिश उनके सम्मुख लानेके लिए ख़ातिबको चार पोशाकें दीं।

प्रायः १२०० ई० में सुलतान अल्तमशके राज्यकालमें यह घटना लिखी गई थी। लेखक मुहम्मद ऊफ़ी स्वयं इस घटनाका सत्यासत्य जाँच करने गये थे और उसके बाद ही उन्होंने इसे लिखा था।

उन्हींकी लिखी हुई एक और घटनासे नारीके प्रति हिन्दू राजाओंके व्यवहारका सुन्दर परिचय मिलता है। नारीका सम्मान और स्वाधीनता उस युगमें प्रायः समाप्त हो गई थी। इधर-उधर कोई नारी महिला कवि या तेजस्विनी रानी दिखाई दे जाती थी किन्तु राह-घाटके साधारण जीवनमें नारीका स्थान वहुत छोटा और नीचा हो गया था। इस प्रकारकी मरुभूमि सृष्टिके आरम्भके समयकी एक सरस श्यामल घटना है।

सुरपाल नामका एक गुर्जर राजपूत राजा था। उसकी प्रजाके मतसे उसके समान अच्छा और प्रबल प्रतापी राजा दूसरा नहीं हुआ। एक दिन वह अकेले शिकार खेलने गया। हाथीकी पीठपर वैठकर चलते-चलते उसने एक गाँवके वाहर परम सुन्दरी रजकिनीको कपड़े कछारते देखा। वह रंगीन साड़ी पहने थी, उसका रंग खरा गोरा था। राजा उसे देखते ही आत्महारा हो गया।

प्रेमी कविकी भाषामें उन्होंने कहा—

खिर बिजरी
बरन गोरी
चले नील साड़ी
निंगारी निंगारी
प्राण सहित मोर

किसी तरह वे मनको रोककर महलमें लौटे और उसीके स्वप्न देखने लगे। यद्यपि उस कालके स्वैराचार युगमें राजाके लिए उसे प्राप्त कर लेना कोई बड़ी वात न थी। जिस तरह वीरभोग्या वसुन्धरा है वैसे ही रूपसी राजभोग्या भी है। वासनाके वशीभूत हो राजा राजधर्म त्याग वैठे।

किन्तु अकस्मात् राजाका मन राजधर्मकी ओर फिर गया। उन्होंने अपने मनको संयत किया और राज्यके पण्डित ब्राह्मणोंको वुलाकर चिता

सजाकर अपनी आत्महत्या करनेके लिए प्रस्तुत हुए। ब्राह्मणोंसे वे बोले कि राजधर्मसे वे पतित हो गये हैं, रक्षकसे भक्षक बन गये हैं। अतएव सबको पवित्र करनेवाली इस अग्निमें उन्हें अपनी देह विसर्जन करनी ही चाहिए।

ब्राह्मणोंने इस कर्मका समर्थन किया और कहा कि राजाकी क्षमता असीम होती है। वे यदि कामवासनाको संयत न कर सके तो अन्तमें सब कुलनारियाँ मर्यादारहित हो जायँगी। अतएव अग्निमें प्रवेश कर उनका प्रायश्चित्त करना ही उचित है।

चिता जल उठी। अग्निशिखा चारों ओर प्रकाश करती हुई ऊपर बढ़ने लगी। उस शिखाको हाथ जोड़कर प्रार्थना करते-करते राजा आगे बढ़े। उनके नेत्र बन्द थे किन्तु मनमें कोई सन्देह या संशय नहीं था।

वे अग्निमें फाँदनेवाले ही थे कि ब्राह्मणोंने उन्हें पकड़ लिया और कहा कि उनकी अग्नि शुद्धि हो गई है। उन्होंने विधान दिया कि राजाके मन ही ने पाप किया था, देह निष्पाप रही। पाप न करनेके कारण देहको दाह करना निरपराधको दण्ड देनेके समान हुआ। और मनने जो पाप किया था उसकी शुद्धि इस अग्निव्रतसे हो गई।

मनकी समस्त ज्वाला दूर हो गई। राजाने प्रसन्न मनसे बहुत धन दान दिया। राजधर्मकी जय हुई।

मुहम्मद ऊफ़ीने इस घटनाको लिखनेके बाद मनके आवेगमें एक कविताकी रचना भी की है—

राजा न्याय करे, उसका हो, चाहे कोई भी ईमान
उसका राज्य रहेगा निर्भय और सदा होगा कल्याण।

मानवताकी दृष्टिसे हिन्दू-मुसलमान विभिन्न नहीं हैं।

नया हिन्दुस्तान आज इसीकी तैयारी कर रहा है। उसका नया संविधान उसी न्याय, उसी सर्वधर्म-निरपेक्षताकी भित्तिपर विश्वास करता है।

उस युगमें हिन्दुस्तानपर जो अत्याचार हुआ है उसके अन्यायको हम सोमनाथ मन्दिरकी नूतन स्थापना कर दूर कर सकते हैं। किन्तु केवल उसकी प्रतिष्ठा ही तो सब कुछ नहीं है।

हमें निर्माण करना होगा नया हिन्दुस्तान, नया देश, नये भक्तोंका दल जिनके हृदयोंमें होगी भक्ति किन्तु बाहुओंमें होगी शक्ति और जिनके लिए देश होगा स्वर्गादपि गरीयसी।

: १० :

डाकू लोग हमें पकड़कर ले जायँगे। इस सीमाके उस ओर पाकिस्तान है।

उद्देश्य बुरा नहीं था। चौकीदारने अभय देते हुए कहा कि वे लोग बेकार हमलोगोंको नहीं मारते। ऐसा शायद ही कभी होता हो। साधारणतया ऊँटोंके दल केवल पाकिस्तान जाते हैं। भारत और पाकिस्तान सीमान्तके बीचमें "नो मैन्स लेण्ड है"। उस जन मानव-हीन जगहमें बहुत-से सुविधाके टूटे-फूटे क़िले हैं। जिसकी जानका कोई मूल्य है अर्थात् जिसके खो जानेसे अन्य किसीका नुक़सान होता हो तो ऐसे मनुष्यपर उनका लोभ ऊँटसे भी अधिक होता है। और उसीकी डकैती वे लोग करते हैं। उसमें उन्हें 'रैन्सम' अर्थात् मुक्तिपण ख़ूब अधिक मिलता है।

ऊँटकी अपेक्षा मनुष्यको बन्द करके रखना है भी सहज। भूख-प्यास विशेषकर प्याससे मर जानेके भयसे वे क़िला छोड़कर भाग सकते हैं, किन्तु मनुष्य ऐसा साहस कभी नहीं कर सकता।

कितने रुपये मिल जानेपर डाकू लोग छोड़ देनेके लिए राज़ी हो जायँगे इसको तय करनेमें कई दिन लग जाते हैं।

इसका प्रमाण भी हाथोहाथ अपनी आँखोंसे देख लिया। हमारी रेल लाइन मरुभूमिके बीच होती हुई पोकरान स्टेशनपर समाप्त हो जाती है। उसके आगे पाकिस्तानकी रेल है। उस अन्तिम रेलवे स्टेशनसे पचहत्तर मील उत्तर-पश्चिमकी दिशामें ठेठ मरुभूमिके भीतर जैसलमेर है। इस मरुभूमिमें किसी तरहकी घास, जल, यहाँ तक कि किसी तरहके झाड़-झंकार वग़ैरह नहीं मिलते हैं।

केवल एक चीज़ मिलती है। वह भी आधुनिक युगके कल्याणसे। मैं चल रहा हूँ। एक जीपपर बैठकर, ऊँटकी पीठपर नहीं।

बड़ी कठिनताके साथ एक घण्टे बाद उसने पहुँचाया। किन्तु कितने धचकोले खाये इसका क्या ठिकाना। किसी तरह जीते-जागते पहुँच गये। किन्तु हमारे एक साथी वहीं बालूमें लम्बायमान हो सो गये। उन्हें अपनी छठीका दिन याद आ गया।

यहाँ रास्ता कहने ही भरको है। थोड़ी-थोड़ी दूरपर बालूके बड़े-बड़े ढूहोंकी चोटियाँ भर दिखाई देती हैं। वे भी कब बालू भरी हवाके साथ किधर उड़ कर चले जायँगे और नया ढूह बना लेंगे इसका ठीक नहीं। सरकारने वहाँ कुछ कंकड़-पत्थर बिछाकर एक रास्ता बनाया तो है किन्तु मरुभूमि उसके ऊपर हँसते-हँसते बालूके ढेरके-ढेर जमा कर देती है। उसके बाद जो ठीक तरहसे जानते हैं वे ही रास्ता खोज सकते हैं।

रास्तेमें कहीं-कहीं लकड़ीके डण्डोंमें लिखा हुआ मिला कि अमुक मील-पर अमुक ग्राम है। ऐसे ही एक गाँवका नाम था लाठी। मित्रकी इच्छा हुई कि अब दौड़ बन्द कर दी जाय और वहाँ आराम किया जाय। लौटते समय फिरसे जीपपर बैठकर चला जायगा। किन्तु लाठीकी दूरी जानकर उन्होंने तुरन्त ही मत बदल दिया। कष्ट सहना सहज है, किन्तु यदि डाकुओंके हाथों पड़ गये तो ?

इसके अतिरिक्त बेकारकी कसरत कौन करे ?

लाठीके सरदारने हाथ जोड़कर रोते-रोते निवेदन किया कि उसके ससुरको डाकू लोग ले गये हैं।

नई दिल्लीमें खाने-पीनेके बाद एयरकण्डीशण्ड कमरेमें कुछ अमेरिकनों-ने एक कहानी सुनाई थी। उन्होंने बतलाया कि उनके देशमें डाकू लोग सासको पकड़कर ले जाते हैं और छिपा कर रख लेते हैं। उसके बाद समाचार भेजते हैं :—

जल्दी दस हज़ार डालर भेज दो, नहीं तो अभी तुम्हारी सासको वापस भेजता हूँ। डरके मारे जामाई लोग डाकुओंके पास दस हज़ार डालर भेज देते हैं। रुपया जाय तो जाय किन्तु किसी तरह सास वापस लौटकर न आवें।

देखा नहीं कि मृत्युलोकमें माँ सिंहवाहिनीका अवतार हुआ है जमाई-वाहिनी सासजीके रूपमें।

सुनकर ऐसी हँसी आई कि कभी भुलाये नहीं भूलेगी। किन्तु आज इस बेचारे बनियेकी बात सुनकर मेरे मित्रका मुँह सूख गया। पेटमें पत्थर बाँधकर वे जीपमें सिकुड़ कर सो रहे।

महारावल (महाराजा) बहादुरकी जीपने हमें राज-प्रासादमें पहुँचा दिया। चम्पेके फूलके रंगके पत्थरोंका प्रासाद था। उसकी महीन और सुन्दर कारीगरी राजस्थानमें सबसे अच्छी है। वहीं मैं ठहराया गया।

शहर और क़िलेसे दो मील दूर यह दुमंज़िली राजबाड़ी थी ; झक-मकाते फ़र्नीचर और क़ीमती क़ालीनोंसे सजी हुई। महारावलके प्राइवेट सेक्रेटरीने अतिथिके आदरमें कोई त्रुटि नहीं की। क़िन्तु इसके बाद वे कहाँ ग़ायब हो गये पता नहीं।

समस्त खाने-पीनेकी चीज़ें चाय तक राजबाड़ीमें थी। किन्तु यह आती थीं क़िलेकी राजबाड़ीसे।

सन्ध्याको महारावल और उनके चाचा जीपपर बैठ कर आये। समस्त जैसलमेर शहर–आस-पासके गाँव तक—उन्होंने घुमाकर दिखाया।

कई मीलकी दूरीपर स्थित महारावलोंकी अमरकीर्तिके चबूतरे और मरू-द्यानोंको विशेषतौरपर दिखाया। इन 'ओसिसों'में केवल तालाब ही नहीं, कमल तक थे। वेला, चमेली, आम इत्यादि भो थे। टेरेसदार बगीचे थे। मरुभूमिमें यह सब। विश्वास नहीं होता था।

किन्तु शहर मरुभूमि हो गया था। नई सरकारने इसे पहिले कमि-श्नरका डिवीज़न बनाया। किन्तु अव भी यह एक छोटा महकमा मात्र है। व्यवसाय न होनेके कारण शहर उजाड़ हो गया है। किसी समय ईरान-काबुल-गज़नीका व्यवसाय ऊँटकी पीठपर लद कर जैसलमेर होता हुआ भारतवर्ष आता था। आज ऊँटकी पीठपर चढ़कर अकस्मात् डाकू हमला करते हैं, वैदेशिक वाणिज्यके कारवाँ नही चलते।

राजधानीमें लोग नहीं हैं। राजप्रासादमें राजा नहीं हैं। तरुण अपनी नई विवाहिता महारानी और सामान्य प्रिवीपर्सके साथ क़िलेके पास ही पुरानी राजबाड़ीमें चले गये हैं। बिलकुल अकेले रहते हैं।

एक जैसलमेरीने टिप्पणी की—केवल अकेलेही नहीं, मनमें डरते भी नहीं। हाल फ़ैशनके पैलेस जब बनाये गये थे तब महारावल राज्य करते थे। आज वे साधारण प्रजासे अधिक और कुछ नहीं रह गये हैं। इससे जहाँ वे अपनी धन-सम्पत्ति आत्मीय स्वजनोंको निरापद और कम खर्चमें रख सकेंगे वहीं रहेंगे।

मेहमानोंको इस राजबाड़ीमें डरनेकी कोई बात नहीं है। पाकिस्तानके डाकू केवल स्थानीय बनियों ही का शिकार करते हैं। इससे द्वार-खिड़की बन्द कर सो जाना ही बुद्धिमानीका काम है।

अन्धकार होते ही सियार बोलने लगे। सियारको दाहिनी ओर देखना अमंगल माना जाता है। किन्तु आज मेरे चारों ओर सियार ही सियार हैं। थोड़ो देर तक सियारों ही पर सोचता-विचारता रहा। इसी जैसल-मेरमें एक राजा लक्ष्मणसेन नामके हो गये हैं। प्रत्येक रात्रिको सियारोंका चीत्कार सुन कर वे अस्थिर हो उठे और उन्होंने इसका कारण जाननेकी

आज्ञा दी। मन्त्रियोंने वतलाया कि उन्हें रातमें ठण्डक लगती है, उसीसे चीखते रहते हैं। राजाने उनकी नापके गरम कपड़े वनवाकर वाँट देनेकी आज्ञा दी।

पोशाकें या उनके दाम किसके पल्ले पड़े यह तो नहीं मालूम मग़र इतना ज़रूर हुआ कि सियारोंका रव वन्द नहीं हुआ। इसके वाद लक्ष्मण-सेनने स्वयं ही उनके रोनेके कारणपर विचार किया और सोच-विचार वे इस नतीजेपर पहुँचे कि घर न होनेके कारण वे रोया करते हैं। उन्होंने मरुभूमिमें वहुत-सी जगहोंमें उनके रहनेके लिए छोटी-छोटी कोठरियाँ वनवा दीं। वे कोठरियाँ अव भी जहाँ-तहाँ देखी जा सकती हैं।

वही राजा जिस क़िलेमें रहकर राज्य करते थे वहाँ अव भी दो एक वत्तियाँ जलती हुई दिखाई पड़ रही थीं। वाक़ी सव वत्तियाँ गुलकर लोग सो गये थे। केवल मैं ही जाग रहा था।

अलाउद्दीनकी सेनाने भी इसी तरह रातोंके वाद रात तक क़िलेकी वत्तियोंको देखा होगा। दोष उनका नहीं था। वे प्रतिशोध लेने आये थे। रावल जयसिंहके पुत्रने एक वहुमूल्य सामान ले जाने वाले कारवाँको लूट लिया था। उस कारवाँमें पन्द्रह सौ घोड़े तथा पन्द्रह सौ खच्चरोंके वोझेकी धनराशि थी और वह दिल्लीमें अलाउद्दीनके पास जा रही थी। सम्राट्के पास एक छदाम तक न पहुँच सकी।

चारणोंके शब्दोंमें पठान सेना "भादोंके महीनेमें जैसे मेघोंसे आकाश घिर उठता है" वैसे ही घिर कर आ गई।

क़िलेके वाहर नवाव महवूवख़ाँने अड्डा जमाया था। किन्तु क़िलेकी प्राचीरकी रक्षा कर रहे थे लगभग चार हज़ार जैसलमेरी भट। पीछे रेगिस्तानसे रावलके कनिष्ट पुत्र वीच-वीचमें पठानोंपर हमला कर देते थे। पठानोंको रसद पहुँचना वन्द हो गया। वे किसी तरह क़िलेपर घेरा डाले पड़े रहे।

इधर रावलके पुत्र रतनसिंह और महबूबख़ाँ, दोनोंको एक रोग था—शतरंजका। दोनों पक्के खिलाड़ी थे। समय नियत कर लिया जाता था। रोज़ ठीक उसी समय युद्ध स्थगित कर दिया जाता था। राजपूत क़िलेसे बाहर आ जाते थे और तम्बू छोड़कर नवाव आगे पहुँचते थे। दोनों स्थानोंके बीचमें एक वृक्षके नीचे शतरंज बिछा दी जाती थी। दुआ-सलामके बाद दोनों व्यक्ति खेलने बैठ जाते थे। शत्रुता और लड़ाई, शतरंजकी चालोंमें भुला दी जाती थी।

आठ वर्षों तक लड़ाई चलती रही—हथियार और शतरंज दोनों ही चलते रहे। बिलकुल रूपकथाकी-सी कहानी हो गई।

एक दिन शतरंज खेलते समय नवावने देखा कि राजपूतोंके क़िलेमें खूब स्फूर्ति और गाना-बजाना चल रहा है। बात क्या है? रतनसिंहने बतलाया कि उसके पिता परलोक सिधार गये हैं और बड़े भाई मूलराजका अभिषेक है। नवाबने बधाई दी। और फिर दुःखित होकर कहा कि अब इस पेड़के नीचे मज़ेसे बैठकर शतरंज खेलनेके दिन भी समाप्त हो गये। अलाउद्दीनने हुक्म भेजा है कि दुश्मनके साथ यह जो कुछ हो रहा है उसके बारेमें उसे सब मालूम हो गया है। अब शतरंज बन्द करो और सिर्फ़ युद्ध करो। इसलिए उस दिन उन दोनोंने बहुत दुःखित होकर और खूब जीभर कर शतरंजका सुख उठाया। फिर आलिंगन कर कहा—अब अगले दिन भेंट होगी—मृत्युका आलिंगन होगा।

दूसरे दिन भटों और पठानोंमें मारात्मक युद्ध हुआ। महबूबख़ाँ अपने नौ हज़ार सिपाहियोंको खोकर तम्बूमें लौट आया। दिल्लीसे नई सेना आई। इस बार बहुत ज़ोरोंसे आक्रमण किया गया।

इधर क़िलेमें सेना और रसद समाप्त हो चली थी। मूलराज और उनके सामन्तोंने निर्णय किया कि अब राजपूत अन्तिम उत्सर्ग करनेके लिए युद्ध करेंगे।

किन्तु दूसरे दिन सबेरे देखा गया कि पठान लोग अँधेरा रहते ही

तम्बू ऊखाड़ कर चलने लगे हैं। क़िलेमें खुशियाँ मनाई जाने लगीं। जिन वस्त्रोंसे सजकर वे स्वर्गकी अप्सराओंसे मिलनेकी तैयारी कर रहे थे उन्हींसे अपनी प्रेयसियोंके साथ नूतन अभिसारकी तैयारी करने लगे। झंकारके स्थानपर नूपुरोंकी रुनझुन सुनाई पड़ने लगी।

किन्तु इसी बीचमें नवाव महबूबखाँका छोटा भाई जो क़िलेमें क़ैद था कब भाग निकला यह किसीको पता न चला।

कई दिनों बाद फिर भादोंके मेघोंके समान पठानोंकी फौज क़िलेके नीचे जमा होने लगी। नवावको अपने भाईसे यह मालूम हो गया था कि राजपूतोंके पास न सेना ही है न रसद। वे लौट पड़े और इस निश्चयसे लौटे कि अवकी क़िला ले ही लिया जायगा।

रतनसिंहने कहा—स्त्रियाँ चितामें आत्मसमर्पण करें। फिर केसरिया बाना पहनकर और तलवार हाथमें लेकर क़िलेका फाटक खोलकर हम लोग भी मारकाट करते हुए स्वर्गकी तैयारी करें।

मूलराजने बढ़ावा देते हुए कहा—राजसिंहासनकी रक्षा करनेवाली तलवार तुम्हारे हाथोंमें है। शत्रुओंके ऊपर आघात करते-करते इसमें आज ऐसी ज्वाला उठा दो कि जैसलमेर चमक उठे।

रात्रि बीतनेके बाद अन्तिम मिलनकी तैयारी हुई। राजपूतनियोंने कहा—सबेरा होते ही हम लोग सज-धज कर स्वर्ग चली जायेंगी। स्वामी, भाई, पुत्रके लिए पहिले हीसे ठीक व्यवस्था करनेके लिए हम लोग पहिले ही चली जायेंगी।

उस दिन चालीस हज़ार राजपूतनियोंने इहलोकसे विदा ली। नंगी तलवारें हाथमें लेकर राजपूतोंने अग्निकी ज्वालाको देखा। चालीस हज़ार राजपूतोंने परस्पर आलिंगन किया। अपने हाथोंसे दुर्ग खोलकर वे अन्तिम अभिसारके लिए निकल पड़े।

चारणोंने लिखा है—युद्धके सागरमें रतनसिंह डूब गये। किन्तु उनकी

तलवारकी मारसे दो सौ वीर मारे गये। मूलराजका रक्त बर्बरोंके शरीरों-को भालेसे बेधते-बेधते मिट्टीमें मिल गया।

नवाब महबूब भी वीरपूजा जानते थे। उनके भाईको राजपूतोंने केवल बन्दी कर लिया था, प्राण नहीं लिये थे। उन्होंने यह ऋण युद्ध जीतकर लौटा दिया। रतनसिंहके पुत्रको जीवित रखा गया और जैसलमेरका सिंहा-सन उसे लौटा दिया गया।

जैसलसेरका क़िला इसके वाद कभी भी शत्रुके सम्मुख नहीं हारा।

उसी क़िलेकी शेष रात्रि बीत चली। क्या आज भी रतनसिंह और महबूबखाँ वृक्षके नीचे प्रतिदिनकी तरह शतरंज खेलनेमें मग्न होंगे?

बिजलीकी बत्तियाँ और पंखे बन्द हो गये। महारावलके राज्यकालमें दिन-रात बिजली मिलती थी। राजाने अपने ख़र्चेसे विद्युत्का कारखाना खोला था। जो कुछ नुक़सान होता था वह भी राजाका होता था। अव गणतान्त्रिक सरकारमें हर चीज़में हानि-लाभका विचार रखा जाता है। इसलिए बिजलीका कारखाना कुछ ही घण्टों चलता है। यदि मरुभूमिकी रातें परेशान करती हैं तो वह दोष तुम्हारा है। वैश्य युग ही ठहरा।

किन्तु सन्ध्या वेलामें बिजलीकी-सी झलक महारावलके पूर्वपुरुषों द्वारा बनवाये गये अमरसागरके उस पार दिखाई दी। राजवाड़ेकी सबसे अधिक अनुर्वर भूमिमें सबसे अधिक सुन्दर फूल वहाँ लहलहा रहे थे। वहीं एक हवेली थी, जो अव वीरान पड़ी है। यह स्थान अभी उस दिनतक सुख-सौन्दर्यके स्वप्न देखता था। किन्तु आज पाकिस्तानसे तस्कर व्यापार, डकैती और राहज़नीके दुःस्वप्न देखता है। एक समयमें यहाँके प्रधान मन्त्री श्रीमान् बावना साहबका यह प्रासाद सबसे सुन्दर था। आज दरोग़ा साहबके नाल लगे हुए चमरौधेकी खटाखटसे यहाँके फ़र्श कराह उठते है।

इसी परित्यक्त स्थानके घरोंसे रंगीन सुनहरी-रुपहली चुनरियाँ ओढ़ कर झलमलाती हुई राजस्थानकी रूपवती तरुणियाँ बाहर निकलती होंगी। सिरपर गगरी रखे धीमी चालसे चलती हुई, जलपर नहीं, किन्तु बालुका-

राशिपर राजहंसकी गतिसे सौन्दर्य बिखेरती हुई वे अमरसागरकी ओर जाती होंगी। नहीं, कदाचित् स्वप्न-सागरकी ओर।

इतनी रंग-बिरंगी पोशाकें, आभूषणोंकी इतनी बहार और साथमें चारों ओर खिले फूलोंकी शोभासे आँखें चौंधियाँ उठती होंगी। कान नूपुरोंकी रुनझुनसे तृप्त हो उठते होंगे। इस स्वप्नमें ऐसा बेसुध हो गया कि रंगहीन सीधे-सादे बंगाली जीवनको भूल गया। वहाँ तो सारा जीवन ही नोन, तेल, लकड़ीकी चिन्तामें बीत जाता है।

अमरसागरके लहराते वक्षस्थलपर झरझराती बूँदें गिरने लगीं। क्या अब किसी विरहिणीकी करुण पुकार सुनाई देगी?

जल भरनेके लिए जाती हुई तरुणियोंका 'उमरलो' गीत सुनाई दिया। 'ओ मेरे प्रियतम; न जाने कितनी दूरसे मेघ आ गये हैं। पता नहीं कहाँ बरसेंगे। बोलो प्रियतम मेरे, तुम भी क्या कहीं इसी तरह चले जाओगे। देखो, आकाशमें बहुत बड़े काले पहाड़के समान मेघ उठ रहा है और शीघ्र ही घुलकर बरफ़के समान सफ़ेद हो जायगा। ओ प्यारे, तुम्हारे लौटनेका समय आ गया है। मैं जानती हूँ कि तुम निश्चय ही समयपर आ जाओगे। ····मैंने नये बाँसोंसे नया छप्पर छा लिया है। ओ प्रियतम, अपने दिये हुए वचनोंके अनुसार तुम अवश्य ही आओगे। ····मैंने तुम्हारे लिए छप्परके नीचे चौकी और आलेपर दिया सजाकर रख दिया है। तुम निश्चय ही आओगे।'

'आउयेरे ढोलो उमरलो'

गीतके प्रत्येक पदके अन्तमें वे करुण रागिनीमें गा उठती थीं—

'आउयेरे ढोलो उमरलो'

उज्जयिनीकी पर्वत-चूड़ाओंसे बंगालके तमाल वनोंसे, कवियोंने युगोंसे मेघको निमन्त्रण भेजा है! जनहीन, मेघहीन जैसलमेरकी मरुभूमिकी विरहिणीके मुखसे भी वैसा ही निमन्त्रण ध्वनित होता है।

अकेले कालिदास ही नहीं, हमारे घरों-घरोंमें क्लान्त अकवियोंका दल मेघोंको देखकर अनमना-सा हो उठता है, और प्रेयसीके निकट पहुँचनेके लिए व्याकुल हो उठता है। और यदि वे दूर बहुत दूर हुए तब ? इस दुस्तर मरुके उस पार ? उसके भी और आगे बहुत दूर ?

प्रेयसी यदि दूर दुर्गम पर्वतकी चूड़ापर है तब। क़िलेके झरोखेके पास बैठकर विरहिणी अँधेरी रातमें दिया जलाये बैठी रहेगी। घोड़ेपर वायुवेगसे उसका प्रियतम व्याकुल होकर आता होगा। उसकी प्रतीक्षामें वातायनके पास दीपशिखाके अतिरिक्त दो नेत्र भी उसे कहीं खोज रहे होंगे। किन्तु यदि मिलन न हुआ ? विरहसागरकी लहरें यदि उन दोनोंको अलग ही रखें तब ?

आज अँधेरी रात्रिमें एक-दो नक्षत्रोंको छोड़कर और कुछ भी नहीं है। मेरी आँखोंमें नींद भी नहीं है। रोमियो-जूलियटकी आत्मा चिर-कालसे विरही-विरहिणी बनकर आकाशमें नक्षत्र बनकर चले गये हैं। पृथ्वीराज और ताराबाई भी निश्चय ही इसी तरहसे कहीं होंगे। वीर प्रेमी पृथ्वीराज और बेदनूर शहरकी ताराबाई।

राणा रायमल्लके तीन पुत्र और छोटा भाई पहाड़पर बने चारणी देवीके मन्दिरमें गये। सांगा, पृथ्वीराज और जयमल्लके बीचमें राजा कौन होगा इस बातको लेकर उनके मन अग्निकी तरह धधक रहे थे। सांगा ज्येष्ठ पुत्र थे। पिताके बाद मेवाड़का सिंहासन उन्हींको मिलनेकी बात थी। (इन्हें वह मिला भी, बाबरके साथ ये ही लड़े थे)। किन्तु ये अत्यन्त सावधान और सोच-विचारकर काम करनेवाले थे। पृथ्वीराज लापरवाह थे। देशके शत्रुके विरुद्ध सेना लेकर जानेके लिए वे बेचैन रहते थे। इनमें रणकौशल और साहस कूट-कूटकर भरा था। और जयमल्ल ? क्या सबसे छोटा पुत्र होनेके कारण ही उनमें सिंहासन पानेकी इच्छा नहीं होनी चाहिए ? भाई सूर्यमल्लकी नज़र भी उस ओर थी।

सूर्यमल्ल और भाइयोंने पृथ्वीराजको समझाया कि देशके शत्रुके विरुद्ध

जो सबसे अच्छी तरह लड़ेगा उसे ही राजा होना चाहिए। सांगा भी देशको कम प्यार नहीं करते थे। उन्होंने कहा ठीक तो है, भगवान् जिसके हाथमें सबसे बड़ा काम सौपेंगे उसे ही मेवाड़का राणा बनायेंगे। मैं बड़ा होनेपर भी अपना दावा छोड़नेके लिए राज़ी हूँ। चलो बाघ पहाड़में चारणी देवीके मन्दिर चलकर वहाँकी पुजारिनसे पूछताछ की जाय।

पुजारिन मन्दिरमें नहीं थी। सब लोग वहीं बैठकर उसकी प्रतीक्षा करने लगे। पृथ्वीराज और जयमल्ल पुजारिनके बिछौनेपर जाकर बैठ गये, और सांगा बाघकी छालपर। सूर्यमल्ल एक हाथ बाघकी छालपर रखकर भूमिपर ही बैठ गये।

महाभारतमें कुरुक्षेत्र युद्धके पहिले ही अर्जुन और दुर्योधन दोनों श्रीकृष्णके निकट उनका साहाय्य प्राप्त करनेके लिए गये थे। श्रीकृष्ण उस समय सो रहे थे। दुर्योधन उनके सिरहाने जाकर बैठ गये। और अर्जुन उनके पैरोंकी ओर। वास्तवमें सहायताकी भिक्षा तो इन्होंने ही की। श्रीकृष्णने नींदसे जागनेके साथ-ही-साथ पहिले अर्जुनको देखा। सहायता भी उन्हें ही मिली।

थोड़ी देरमें पुजारिन वहाँ आई। पृथ्वीराज सब कामोंमें आगे रहते थे। हड़बड़ाकर उन्होंने अपने आनेका उद्देश्य बतलाया। किन्तु पुजारिनने घूमकर सांगाकी ओर देखा। आद्यकालसे राजाओंका आसन बाघकी छाल रहा है। तुम बाघकी छालपर बैठे हो इससे आगे चलकर मेवाड़के राणा भी तुम ही होगे।

पास ही सूर्यमल्ल बैठे थे। उनको देखकर बोली—और जो तुम बाघ की छालपर एक हाथ रखकर बैठे हो इससे तुम्हें भी भविष्यमें राज्यका एक टुकड़ा मिलेगा। किन्तु वह भी अनेक दुःखों और युद्धोंके बाद।

इतना सुनते ही वहाँ बैठे सब लोगोंका खून खौल उठा। क्रोधमें आपेसे बाहर होकर पृथ्वीराज सांगाको मारनेके लिए उठे। किन्तु बीचमें

सूर्यमल्ल पड़ गये । मेवाड़के भावी राणा बच गये । उनकी एक आँख गई और तमाम शरीरसे रक्त बहने लगा ।

तब भी रक्षा नहीं हुई । पृथ्वीराज और सूर्यमल्लको इस लड़ाईमें हल्की चोटें आई थीं । वे दोनों मन्दिरमें जाकर पड़ रहे । किन्तु जयमल्ल अपने संगी सामन्तोंके साथ सांगासे भिड़नेके लिए तैयार हुआ । मन्दिरके पास ही एक राठौर वीर खड़ा था । सांगाने उसे अपना परिचय देखकर प्राण-भिक्षा माँगी । राठौरने उन्हें आश्रय दिया और कहा कि जब तक सांगा भाग नहीं जायेंगे तब तक वह अकेला जयमल्लके दलके साथ युद्ध करेगा । आश्रित बच गया किन्तु राठौरके प्राण चले गये ।

हिन्दू राजाओंमें वीरतामें सबका शिरोमणि था मेवाड़ । चारों ओर मुसलमान शत्रुओंका राज्य था । उन्होंने एक-एक करके सब हिन्दू राज्योंको हड़प लिया था । उत्तर-पश्चिमके गिरिपथसे तैमूर बाबरके आक्रमण हुए थे । तब भी मेवाड़के राजपूतोंमें भाई-भाईमें मारकाट मची रही । सिंहासनको लेकर खींचातानी हुई । फिर हिन्दुओंका भविष्य और क्या हो सकता था ?

राणाके कानोंमें सब समाचार पहुँचा । उन्होंने पृथ्वीराजको निर्वासित कर दिया ।—तुम्हें लड़ाई बहुत प्यारी है तो जाओ इसीसे पेट भरो ।

निर्वासित होकर पृथ्वीराज अपना काम करने लगे । वे एकके बाद एक परगनोंपर दखल करके अपना नाम और पिताका राज्य बढ़ाने लगे ।

मेवाड़के बेदनूर शहरमें पठानोंसे हारकर टोडा राजाने आश्रय लिया । कई बार चेष्टा करनेपर भी पह अपना राज्य हस्तगत न कर सके । उनकी ओरसे लड़नेके लिए बहुत-से राजपूत वीर आते थे । कारण यह था कि जो वीर टोडा जय कर लेगा उसीके साथ राजा अपनी राजकुमारी ताराबाईका विवाह कर देंगे । ताराबाई अन्दर बैठकर भोजन बनाने, सीना पिरोना करने और संसारकी सेवा करनेके लिए नहीं बनी थी । उसका जन्म घोड़ेपर बैठकर और तलवार हाथमें लेकर शत्रुसे युद्ध करनेके लिए

हुआ था। उसकी बरछी और कटाक्ष एक-सी ही मार करते थे। अत्यन्त रूपवती होनेके कारण ही लोग उसे बेदनूरकी तारा कहते थे।

जयमल्लने टोडाराजके पास राजकुमारीके साथ विवाहका प्रस्ताव भेजा। उत्तर दिया ताराबाईने—जो मेरे पिताका राज्य जीतकर इन्हें दे देगा उसीको मैं वरमाला पहनाऊँगी। केवल वसुन्धरा ही वीर भोग्या नहीं है। नारी भी है।

जयमल्लने ताराबाईसे परिचय प्राप्त किया और कहा कि वह उसके पिताका राज्य अवश्य जीतेगा। किन्तु अफ़ीमके झोंकेके कारण या उसके सौन्दर्य्य और भरपूर यौवनके नशेके कारण वह असंयत हो गया। और टोडा राजाकी तलवारसे अपना शीश गवाँ बैठा।

पुत्रकी हत्याका प्रतिशोध चाहिए। सिरके बदले चाहिए सिर। मेवाड़के सामन्त गरम हो उठे। एक-एककर राणाको उकसाने लगे। किन्तु राणाने सिर हिला दिया। जो असहाया नारीका असम्मान करता है, उस आश्रितकी मर्यादा नहीं समझता है, उसे मरना ही चाहिए। केवल इतना ही नहीं इस अन्यायका प्रायश्चित्त मैं करूँगा। बेदनूरकी जागीर मेरे पुत्र-हन्ताको ही मिलेगी।

भाई इस तरह मारा गया। पिताने उसका प्रायश्चित्त इस तरहसे किया। और इन सबके ऊपर ताराबाईका इतना रूप। इसपर भी यदि पुरुषत्व जाग न उठे तो फिर राजपूत होनेसे क्या लाभ?

पृथ्वीराजने कमरमें तलवार बाँधी।

उन्होंने एकबार ताराबाईसे पाणि-प्रार्थना की।

क्या तुम मेरी सहधर्मिणी बनोगी?

क्या तुम मेरे पिताका राज्य टोडा शत्रुके हाथोंसे मुक्त करा सकोगे?

करा सकूँगा। राजपूती प्रतिज्ञा करता हूँ, अपनी क़सम खाकर कहता हूँ कि करा सकूँगा।

अच्छा फिर वैसा ही करो। मैं तभी तुम्हारी सहधर्मिणी बनूँगी। साथमें सहकर्मिणी भी।

साथ-साथ घोड़ेपर बैठकर वे टोडा जय करने चले। तुम बाहुकी शक्ति हो। वही शक्ति जीवन-मरणकी साथी होकर चल रही है।

टोडा शहरमें खूब उत्सव चल रहा था। खूब भीड़ें जमा हो रहीं थीं। एक बरामदेसे पठानोंने लोगोंकी भीड़ देखी और दरबारी पोशाक पहन ली। उन्होंने देखा कि भीड़में दो व्यक्ति विदेशी पोशाक पहने हैं। ये कौन हैं? क्या कहीं दूरके हैं?

किन्तु प्रश्नका उत्तर नहीं मिल पाया। उसी भीड़में एक सुन्दर युवकने धनुषको टंकार देकर चढ़ाया और दूसरेने हवामें सनसनाता भाला घुमाया। सूबेदारकी मृतदेह वहाँ लोटने लगी।

चारों ओर भीषण हलचल मच गई। बात क्या है? सभी अपने प्राण बचाना चाहते थे। उसी समय वीर दम्पति नगर द्वारकी ओर पहुँचे। बाहर राजपूतोंकी सेना खड़ी थी। द्वारपर एक हाथी सूँड उठाये खड़ा था। पलक मारते ही बिजलीके समान तलवार हवामें कौंधी और हाथीकी सूँड़ भूमिपर गिर पड़ी। हाथी चिग्घाड़ा और द्वार छोड़कर भागा। ताराबाईने अपने हाथोंसे फाटक खोल दिया। बेदनूरकी ताराकी जय।

इस हारका बदला लेनेके लिए अजमेरके सूबेदारने तैयारी की। आत्म-रक्षाकी सबसे अच्छी युक्ति शत्रुपर पहिले हीसे हमला कर देना है। चिरकालसे यही रणनीति रही है। पृथ्वीराजने दलबल सहित रातोरात अजमेरकी ओर प्रस्थान कर दिया। प्रातःकाल लोगोंने देखा कि अजमेरके क़िलेकी चूड़ापर राजपूतोंका झण्डा फहरा रहा है।

इधर वृद्ध राणा हताश बैठे थे। ज्येष्ठ पुत्र सांगाका पता नहीं था; कनिष्ठपुत्र जयमल्ल मर चुका था। एक पृथ्वीराज बचे थे। उन्हें निर्वासित किया जा चुका था। उनके जयगानसे और पुत्रवधूके रूप और वीरताकी

गाथाओंसे समस्त राजस्थान गूँज उठा था। उन्होंने पुत्रको लौट आनेका निमन्त्रण दिया।

पृथ्वीराजका अपने पिताके प्रति कोई झगड़ा न था। किन्तु उसने कहा कि क्या वह आरामसे राजप्रासादमें दिन काटनेके लिए है। मेवाड़के पश्चिमकी ओरसे दिल्लीका हमला होगा, मालवाका सुल्तान भी आक्रमण करेगा। उन्होंने पश्चिम सीमान्तपर कमलमीरमें एक नया क़िला बनवाया। प्रतिरक्षा और आक्रमणके समस्त प्रबन्ध इसमें किये गये। गोली छोड़नेके मोकले बनाये गये, पहरा देनेके लिए गुमटियाँ बनाई गई, और सबसे ऊपर चोटीपर ताराबाईके लिए मेघमहल बनवाया गया।

राज्यकी सीमापर अक्सर लूटमार और डकैतियाँ हो जाया करती थीं। विचार व्यवस्था अच्छी नहीं थी। पृथ्वीराजने वहाँ शान्ति और न्यायकी सुव्यवस्था की। एडवेन्चरकी गन्ध पाते ही राजपूतोंके दलोंके दल उनकी सेनामें भरती होने लगे। चारणोंने गाया "उनकी तलवार आकाशमें चमकती थी और पृथिवीमें सबको भयभीत करती थी। जिसकी रक्षा करनेवाला कोई नहीं था, उसकी रक्षा करती थी।" राबिनहुडका राजसंस्करण।

इधर सूर्यमल्लने विद्रोह कर दिया। वे पुजारिनकी भविष्यवाणी भूले नहीं थे। उन्हें राजा होना ही है। उन्होंने मालवाके सुलतानकी सहायतासे लूटपाट करते-करते मेवाड़के थोड़ेसे भागपर कब्ज़ा कर लिया। राणाके साथ युद्ध हुआ। साधारण-सा युद्ध समझ कर राणा साधारण-सी सेना लेकर युद्ध करने गये। उनकी बहुत बुरी तरहसे हार हो गई होती यदि ऐन मौक़ेपर अकस्मात् पृथ्वीराज अपने राबिनहुडके दलको लेकर वहाँ उनकी सहायताको पहुँच न जाते।

रात अधिक हो जानेपर उस दिनका युद्ध मुल्तवी कर दिया गया। किन्तु दोनों दलोंके शिविरोंमें प्रकाश हो रहा था। कब सबेरा हो और युद्ध हो। किन्तु पृथ्वीराज इतमीनानसे अकस्मात् सूर्यमल्लके तम्बूमें पहुँच

गये। उनके घावोंकी मरहमपट्टी और सिलाई की जा चुकी थी। वे बिछौनेपर सो रहे थे कि अकस्मात् तम्बूके भीतर पृथ्वीराज। भय और आतंकसे हड़बड़ा कर सूर्यमल्ल उठ बैठे। उनके घाव पुनः खुल गये और उनमेंसे रक्त बहने लगा।

किन्तु पृथ्वीराजने हँस कर अभय दिया। क्या मैं इस अन्धेरी रातमें चोरकी तरह आपको मारूँगा ? आप अच्छे तो हैं ? सूर्यमल्ल भी कम नहीं थे। धीरेसे बोले—तुम्हें देखते ही मैं अच्छा हो गया हूँ। कोई कष्ट नहीं है।—किन्तु काका; तुम्हें देखे बग़ैर मुझसे रहा नहीं गया। मैं बिना खाये पिये यहाँ चला आया हूँ। भूख लग रही है, कुछ खिलाइये।

भोजन आया। जो जीवन भर एक-दूसरेकी मृत्यु चाहते रहे—मनमें भी और अवसर मिल जानेपर प्रत्यक्षमें भी—वे एक साथ बैठकर एक ही थालमें खाने लगे। मानो इनसे बढ़कर हितैषी और दूसरा कोई नहीं है।

—कल सबेरेकी हमारी लड़ाई इस पार या उसपार होकर रहेगी—यह कहकर पृथ्वीराजने विदा माँगी।

सूर्यमल्लने उत्तर दिया—यही ठीक रहेगा, बेटा। ज़रा जल्दी ही आ जाना।

दूसरे दिन सूर्यमल्लकी हार हो गई। किन्तु पृथ्वीराजकी तलवारकी छाया तक उनके शरीरपर पड़ने न पाई। जंगलमें घने वृक्षोंके पीछे छिपकर वे तैयारी करने लगे। उन्हें आशा थी कि यहाँ शत्रु-पक्ष उनकी तैयारीकी ख़बर जान न सकेगा। किन्तु एक गम्भीर रात्रिमें अकस्मात् डालोंके टूटनेकी और लतापत्तोंकी खड़खड़ाहट सुनाई दी। सूर्यमल्ल चिल्ला उठे—यह निश्चय ही मेरा भतीजा है। उसके अलावा और कोई इस तरह यहाँ तक नहीं आ सकता है। हाथमें तलवार सँभालते-सँभालते वे पृथ्वीराजकी एक तलवारकी एक मारसे गिर पड़े।

सूर्यमल्लने युद्ध रोक देनेका अनुरोध किया। वे बोले—मैं यदि मर

गया तो कुछ हानि न होगी। मेरे बेटे राजपूत हैं। वे लड़ेंगे और बदला लेंगे। किन्तु बेटा, यदि तुम मर गये तो चित्तौड़का क्या होगा?

अन्तमें चित्तौड़के भविष्यको सोचकर सूर्यमल्लने शत्रुको छोड़ दिया और देश छोड़कर चले गये। इन्हींके वंशके एक गौरव, देवलके राजाने, अकबरके चित्तौड़ विजयके समय कापुरुष राणाके बदले अपने सिरपर राजछत्र रखकर लड़ते-लड़ते प्राण दे दिये थे।

एक नारीके कातर रुदनने इसी समय पृथ्वीराजके मनको हिला दिया।

उनकी अपनी एक सगी बहिनका विवाह सिरोहीके राजाके साथ हुआ था। मेवाड़के जमाईको माउण्टआबू सरीखी सुन्दर जगह दहेजमें मिली थी। तब भी जमाई नववधूके प्रति अकथ्य अत्याचार करते थे। अफ़ीम खाकर या मदिरा पानकर स्त्रीके ऊपर अत्याचार करनेकी बहादुरीके प्रमाण तो बहुतसे स्वामियोंमें मिल जायेंगे। किन्तु ऐसे वीर पुरुष कम मिलेंगे जो स्त्रीको केशोंसे पकड़ कर शय्यासे भूमिपर खींचकर और फिर पलङ्गके नीचे फेंककर उसे वहीं सोनेके लिए बाध्य करेंगे।

सिरोहीराज अफ़ीममें बुत होकर पलङ्गपर सो रहे थे और उनकी स्त्री पलङ्गके नीचे। इसी समय पलङ्गके पास एक विराट् लम्बी मूर्ति आकर खड़ी हो गई। आधीरातको राजप्रासादकी दीवारें फाँदकर, सिपाही सन्त्रियोंकी आँखोंमें धूल झोंककर पृथ्वीराज यहाँ आ पहुँचे थे। किन्तु स्वामीके गलेपर छुरा रखा देखकर स्त्रीने भाईसे स्वामीकी प्राणभिक्षा माँगी। भयके मारे राजाका नशा हिरन हो गया। उन्होंने स्त्रीकी जूतियोंको अपने सिरके ऊपर रखा, उसके पैरों पड़े और यह प्रतिज्ञाकी कि अब कभी भी वे उसके साथ बुरा व्यवहार नहीं करेंगे। तब उनकी जान बची।

इसके बाद पृथ्वीराजने भगिनीपतिको हृदयसे लगा लिया। ठीक उसी तरह जैसे वे पराजित शत्रुको क्षमा कर गलेसे लगा लेते थे। वे राजप्रासादमें छिपकर आये थे, किन्तु अब उनका सम्मान राजाओंकी तरह

होने लगा। मेवाड़के युवराज और रानीके भाई कई दिनोंतक वहाँ रहे। खूब धूमधाम मनाया गया।

विदाके समय जब वे घोड़े पर बैठ रहे थे, उस समय सिरोहीराजने अपने हाथोंसे पृथ्वीराजको कुछ मिठाई दी। सिरोही मिठाइयोंके लिए प्रसिद्ध था।

जिसने सम्मुख समरमें हमेशा धर्मयुद्ध किया, वह शत्रुके हाथके खाने-पीनेके बारेमें सन्देह कैसे करे? रास्तेमें चलते-चलते उन्होंने सिरोहीकी मिठाई खाई, किन्तु कमलमीर तक पहुँच न सके। जिस पहाड़की चोटीसे कमलमीरकी पहाड़ियाँ दिखाई देती हैं वहाँ पहुँचकर उनका हृदय धड़कने लगा। उन्होंने ताराबाईको समाचार भेजा। वे उस समय मेघमहलके वातायनसे उनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। दूर, बहुत दूर पहाड़ीपर उन्होंने अपने स्वामीको देख लिया था। ताराबाईके नेत्र व्याकुल हो उसी ओर गड़े हुए थे। पृथ्वीराज भी हलकी आशा लिये हुए अपने नेत्र किसी तरह खोले हुए थे। मरनेके पहिले किसी तरह एक बार तो ताराबाईको देख लें।

एक दूसरेकी दृष्टि-विनिमय न हो सकी। किन्तु वीर नारीके गीतोंसे जो आकाश भरा पड़ा है उसके नीचे तारों भरी रातमें मैं अकेला नहीं हूँ।

: ११ :

देखिए तो सुईका कैसा महीन काम है। ऐसा लगता है कि मशीनसे बनाया गया हो। बेलज़ियमको मात कर दिया है, जहाँ दुनियाकी सबसे बढ़िया लेस तैयार होती है।

मैं आनन्द सिंहके मुखकी ओर देखने लगा। फिर लेसकी ओर ग़ौर

किया। कितनी ममतासे उन्होंने लेसपर अपनी उँगलियाँ फेरी थीं। उनके मुखपर कितनी खुशी नाच उठी थी।

बात मेरी समझमें आ गई। निश्चय ही उनकी स्त्रीने इसे तैयार किया है। इस समय कालिदास न हुए। किन्तु कुछ-न-कुछ उपमा तो देनी ही होगी। नहीं तो ठाकुर साहबके निकट बंगाली साहित्यकारका मान नहीं रहेगा। किन्तु क्या कहूँ, क्या कहूँ ?

तुरन्त मेरे मस्तकमें एक विचार आया। कहा—वाह, क्या चमत्कार-पूर्ण काम है। ठीक अढ़ाई दिनके झोपड़ेकी तरह।

ठाकुर साहब आँखें उठाकर मेरी ओर ताकने लगे। उन्हें कुछ अवि-श्वास-सा हुआ। क्या पता यह तारीफ़ है या कुछ और। या एक संगमर-मरके बने धर्मस्थानके साथ तुलना कर हँसी-मज़ाक़ किया जा रहा है।

सामान्य सुई और डोरेसे श्रीमती आनन्द सिंहने बहुत सुन्दर लेस बनाई थीं। इसकी तुलना केवल अढ़ाई दिनके झोपड़ेकी पत्थरकी जालीसे की जा सकती थी। पहिले वह एक पाठशाला थी। टाड और कनिंघमके मतानुसार हिन्दू स्थापत्य शिल्पका इससे बढ़कर सुन्दर नमूना अन्यत्र नहीं हैं। पृथ्वीमें जितने सुन्दर प्राचीन प्रासाद हैं, उनमेंसे कोई भी इसके बरा-बर नहीं ठहरता है। ऐसा लगता है यह पत्थरका बना हुआ नहीं है। किन्तु आँखोंको चौंधिया देनेवाला, सुन्दर, महीन कारीगरीसे भरा हुआ एक जड़ाऊ गहना है।

नहीं, नहीं, एक सामान्य लेसके बारेमें यह सब आप क्या कह रहे हैं। यह तो आप बहुत बढ़ाकर कह रहे हैं। आनन्द सिंहने प्रतिवाद किया।

क्यों ? इतनी बड़ी और सुन्दर पाठशालाको तोड़कर यदि अढ़ाई दिनमें मसजिद बनाना सम्भव हो सकता है तो मैंने बढ़ाकर क्या कहा ?

बात बढ़ाकर बोलना हमारे देशका नेशनल आर्ट है। जातीय शिल्पकला।

सहमतिमें मैंने शिर हिलाया। जिज्ञासा करते हुए मैंने कहा—झोपड़ीके आसपास खुदाईमें पाये हुए पत्थरोंमें लिखा मिला है कि अजमेरके राजा अजयदेवके पुत्रने अजमेरकी मिट्टीको तुर्कोंके रक्तसे रंग दिया था। और वह सब कैसे लाल हो गई थी यह भी लिखा है। ठीक जैसे युद्ध जीतकर स्वामीके लौटनेपर स्त्री लाल कुसुम्वी रंगकी वेशभूषा करती है।

ठाकुर आनन्दसिंहको यह वात मालूम थी। एक और घटना उन्हें वतलाई।

दिल्लीमें कुतुबमीनारके पास क्षयहीन, मोर्चाहीन लौहस्तम्भमें उसके वैज्ञानिक निर्माणकर्ताका नाम नहीं खुदा है। उसके वदले उसमें एक राजाका नाम खुदा है जिसका पता इतिहासमें कहीं नहीं मिलता। उसकी वीरताका वर्णन उसमें लिखा है। उसकी क्षमता दक्षिण सागरसे यहाँ तक थी। वे पृथ्वीके एकछत्र अधिपति थे। पूर्वदेशके हिन्दू, पठान, मुग़ल सभीमें यह रोग एक-सा था। इस झोपड़ेमें सुलतान अल्तमशका वर्णन है कि वे पृथ्वीके राजा हैं, मनुष्यकी श्रेष्ठ वुद्धिके अधिकारी तथा अरव और फ़ारसके भी राजा हैं। सिर्फ़ पृथ्वी ही से वे सन्तुष्ट नहीं होते थे। वे इस जगत्में ईश्वरकी छाया थे और धर्म तथा पृथ्वीके सूर्य।

इस अजमेरके तारागढ़ पहाड़के पश्चिममें अत्यन्त सुन्दर दृश्यके वीचमें चशमा उपत्यका है। वहाँ जहाँगीरने चशमा-ए-नूर नामका एक महल वनवाया था। उसमें लिखा है कि वे सप्तलोकोंके राजा हैं, चित्रगुप्तके खातेमें उनके समस्त गुण लिखनेका स्थान नहीं है। (हाय ! उस खातेमें भी दोषगुण लिखनेके लिए कागज़का राशन कर दिया गया)। केवल इतना ही नहीं। वे जव इस स्थानके झरनेके पास जाकर खड़े हुए तव उनकी दया हीसे अकस्मात् जल वहना शुरू हुआ और वहाँकी धूलि तक पारसमणि हो गई।

आज भी ठीक उसी तरह मनुष्यके मस्तकपर फूल बेलपत्ती चढ़ाकर हमने उसे इतना गरम कर दिया है कि उसकी मनुष्यता वास्तवमें नष्ट हो गई है। खुशामदसे देवता भी प्रसन्न हो जाते हैं। मनुष्य तो खैर चीज़ ही क्या है। पूर्वका यह पुराना ज़हर कितना सांघातिक है इसे समझकर ही गान्धीजी महात्मा नामसे प्रसन्न नहीं थे।

ख़ुशामद करनेमें बात बढ़ा-चढ़ाकर कहनी ही पड़ती है। सूखी बातसे तो चिउड़ा तक नहीं भींगता। और भाई, बढ़िया बातसे मन तक गल जाता है।

ऐसा क्या ?

वसन्त वायुको एक नई रंगत दे देता है। मरुभूमिके निर्जन देशमें अजमेर एक बड़ा शहर है। उसमें भी अन्नासागर एक ओसिस, मरुद्यान है। इस स्थानपर मैं ठाकुर आनन्दसिंहके समान सुरसिक व्यक्तिका अतिथि था। हँसकर मैंने कहा—कवियोंने मनके दुःखको गाया है—न मिली मनकी थाह तुम्हारी प्रियतम। मगर आपतो बहादुर लोग हैं, केवल बातचीत ही से मन कैसे गलाया जा सकेगा ?

ठाकुर साहबको बातचीतमें 'युद्धं देहि'के चैलेंजकी गन्ध मिली। गम्भीर होकर वह मूँछोंपर उँगलियाँ फेरने लगे, मानो तलवारपर सान रख रहे हों राजपूत जो ठहरे।

नहीं, श्रीमान्‌जी, हँसिए मत। आप तो जानते ही हैं मूँछ और तलवार ये दो राजपूतोंके बहुत बड़े हथियार हैं, बहादुरीके ज़बरदस्त चिह्न। यदि आप खरे राजपूत हैं तो मूछोंपर हाथ रखकर कसम खायेंगे। वह बात कभी ग़लत नहीं हो सकती।

मूछोंपर हाथ फेरते-फेरते वे पिछले दिनोंकी कुछ बातें कह बैठे। आनन्द सिंह मेयो कालेजसे पढ़कर मूँछ विहीन होकर निकले थे। मरुभूमिके बीचमें एक अज्ञात ठिकाना (जागीर) से उनके पिता बहुत तंगीसे उन्हें रुपया भेजते थे। वे चाहते थे कि उनका पुत्र कालेजमें ठीक तरहसे पढ़े-लिखे, साहबी क़ायदे

सीखे। किन्तु साहबी शिक्षाके साथ-साथ इन्होंने एक साहबी रोग भी पाल लिया। अर्थात् ठाकुर आनन्दसिंह प्रेममें पड़ गये। वह भी विलायती क़ायदेसे। एक अर्ध-विलायती तरुणीके साथ। यहाँ रेलवे वर्कशापकी कृपासे इस तरहकी तरुणियोंका अभाव नहीं है।

आज ठाकुर साहबके ओठोंपर मूँछोंकी लहरें खेलती हैं। उस आधुनिक प्रेमका नशा छूट गया, स्वप्न भङ्ग हो गया। किन्तु दीर्घ निःश्वास छोड़कर उन्होंने कहा—इस प्रेमकी घुड़दौड़में विलायती छोकरों तक पहुँचना मुश्किल है। और उस तरुणीके रूपगुणकी तारीफ़ तो उन्होंने यहाँ तक की कि हेलेन ऑव ट्रायसे लेकर चित्तौड़की पद्मिनी तक उसके रूपकी बराबरी नहीं कर सकतीं। इस मामलेमें उन्हें कोई सन्देह नहीं है।

मैंने टिप्पणी की—ब्यूटी इज़ दि लवर्स गिफ्ट—रूप प्रेमियोंका उपहार है।

ठाकुर साहब सिर हिलाकर बोले—उहंक्, यह ठीक नहीं। रूप आँखोंका नशा है, किन्तु उसके रसको मुखकी भाषा कहती है। यहींपर आप साहित्यिक लोग प्रेमियोंसे बढ़ जाते हैं।

अर्थात् साहित्यिक लोग प्रेमके खेलमें उतरनेपर बाज़ी मातकर देते हैं? यह कहते-कहते सुन्दर काम किया हुआ अजमेरी नागरेके जूतेका जोड़ा मैं अपने पैरोंमें डालने लगा। मानो यह ताज़ा सुसंवाद साहित्यिकोंको अभी बताने जा रहा होऊँ। ठाकुर साहब आश्वासन देते हुए बोले—यदि कलमकी अपेक्षा ज़बानमें ज़ोर अधिक हो तो यह बिलकुल असम्भव तो नहीं है।

यही सब तो आपने गोलमाल कर दिया—मैंने बहुत अधिक आशाभंग-का भाव दिखाते हुए कहा। जहाँ और कोई ज़ोर नहीं होता है वहाँ कलममें ज़ोर रहता है। इसीलिए तो निर्भय होकर लोग साहित्यिकोंके साथ हँसी-ठट्टा करते हैं। बात है भी यही! धीरेसे बतलाइए तो यह विद्या आपने किस गुरुसे सीखी है। इस मरुभूमिके देशमें आनन्दसिंह ही

एक फूल है। किन्तु हमारे बंगालमें चारों तरफ़ लोग प्रेममें पड़नेको तैयार बैठे रहते हैं। एक बार अपने गुरुजीका ठिकाना तो वतला दीजिए। फिर देखता हूँ मुझे कौन पछाड़ता है? वालीगंज लेकके उस ओर वहुत वढ़िया-सा एक फ्लेट किरायेपर लेकर उसमें एक नोटिस लटका दिया जायगा—

प्रेमसागर कार्यालय। पुष्कर तीर्थमें स्वप्नमें प्राप्त मन्त्र।

किन्तु आनन्दसिंहने मुझे निराश कर दिया। उनकी विद्या केवल राज-दरवारमें सुनी-सुनाई वातों ही तक थी। खुशामद और बढ़ा-चढ़ाकर कहनेकी दरवारी विद्याको उन्होंनें प्रेमके कारवारमें लगाकर खूब मुनाफ़ा मारा।

उन्होंने हँस कर एक कविता पढ़ी। यही उनका मूलमन्त्र था।

ख़ुशामद ही से आमद है बड़ी इसलिए ख़ुशामद है।
महाराजने कहा एक दिन बैंगन अच्छा होता है,
मैंने उत्तर दिया तभी तो सिर पर मुकुट धरा है।
महाराजने कहा एक दिन बैंगन बहुत बुरा है,
मैंने चट कह दिया तभी तो बेंगुन नाम पड़ा है॥

सुनकर भयानक निराशा हुई। वस, केवल इतना ही? यह विद्या तो आफ़िसके गँवार रेसकल तक अपने 'वॉस' चलाकर अच्छी रिपोर्ट ले लेते हैं। उससे और क्या काम होगा?

होगा श्रीमान्‌जी होगा। आफ़िसका 'वॉस' और घरकी वहू—ये दोनों एक ही चीज़ हैं श्रीमान्‌जी। एक ही आसमानके पंछी, भेद केवल थोड़ी रंगतका है—वस।

सविनय स्वीकार कर लिया और कहा कि मेरे ऐसे सामान्य प्राणी भी अपनेसे वड़े अफ़सरके मनको तर करनेके लिए ख़ूब बढ़ा-चढ़ाकर बातें करते हैं। पड़ोसके मकानके विना कियायेके वरामदेमें बैठकर लम्वी-चौड़ी वातें करनेसे कम लाभ नहीं होता है।

आनन्दसिंह यह बात माननेको राज़ी नहीं हुए। धीरेसे बोले—अच्छा, बताइए तो रास्तेमें एक सुन्दर तरुणी चली जा रही है; उसका वर्णन आप अपने यार-दोस्तोंमें कैसे करेंगे ?

सोचनेमें मुझे ज़रा भी देर नहीं हुई। लड़कपनमें एक पत्रिकामें एक व्यंग्य चित्र देखा था। एक लड़की छोटा-सा छाता हाथमें लिये चली जा रही थी। गलीकी मोड़पर बरामदेमें कवि महाशय उसे देखकर कविता पढ़ रहे थे :—

मयूरपंखी तन,
मयूर सदृश पंख विस्तृत
मस्त हुआ मन।

कवि और तरुणीकी व्यंग्यात्मक छवि उनकी भावभंगीपर वड़ा तीखा प्रहार किया गया था। चित्र मनमें उतर गया था। आजकी वातचीतमें वढ़ा-चढ़ाकर वात करनेकी विद्यामें इस राजपूत वीरने एक वंगालीको जो चैलेंज दिया था उसका जवाव चटपट इस वातसे देकर मैंने उसे गिरा दिया।

हाँ, वात तो ख़ूव कही, जनाव। मगर यह काम आपका है नहीं। आपमें पश्चिमकी हवा वहुत असर कर गई है। वहुत दिनों तक आपने विलायती शिक्षा पाई है। अव सुनिए मैं क्या कहता हूँ :—

हर सोख्ता जाने कि बह कश्मीर दर आयद
ग़र मुर्ग़ क़बाब अस्त बह बालोंपर आयद

आनन्दसिंहने अवाक् कर दिया। एक समय जैसोरमें शाहज़ादा खुर्रमके दरवारमें जैसोर और कश्मीरकी आवहवाकी तुलना होने लगी। वहाँ मौलाना उर्फ़ीकी फ़ारसीकी एक कविता पढ़कर एक व्यक्तिने कश्मीरके हक़में वाज़ी जीत ली थी। उसी कविताकी छाया लेकर आनन्दसिंहने टक्कर दी थी।

उस समय ठाकुर साहवके मनकी रंगत चढ़ रही थी। वे एकके वाद दूसरी कविताएँ सुनाने लगे। कवि क्या वला होती है यह वे नहीं जानते थे। किन्तु उसके भाव और भाषा छटे प्रेममें पड़नेके लिए तैयार युवतियोंके मनको कहाँ तक भुलावा देगी यह पाठिकाएँ विचार करके देख लें।

चाँदकी गोलाई लेकर साँपका-सा पेचोख़म।
घासकी पत्तीकी हल्की थरथराहट वेशो कम॥
बेद मजनूकी नज़ाकत बैलके बलकी कजी।
बाँकपन ताऊसका—नरमी गुले कोहसारकी॥
आगका तन बन गया औ नूरकी मूरत बनी।
शक्ल औरतकी वनी—क्या मोहनी सूरत बनी॥

हाय, वीसवीं शताब्दीकी सीधी-सादी अंग्रेज़ी कविता, हाय, रविठाकुरके वादके युगकी वंगाली कविता! इस युगमें तुम्हारी प्रेयसीकी आँखोंमें सुरमा लगाना तो वड़ी दूरकी वात हो गई है, उसके नेत्रोंमें तो सनग्लास चढ़ गये हैं। अव उसकी चितवनमें इन्द्रधनुषकी माधुरी सहजभावसे नहीं आ सकती।

ठाकुर साहवने इस दुःखको निवेदन किया। वे अव भी, भिन्न-भिन्न भाषाओंमें कितनी नूतन प्रेमकी कविताएँ निकलती हैं, इसकी खबर रखते हैं।

वात-चीतके सिलसिलेको वहीं लानेके विचारसे मैंने कहा—किन्तु कुछ मिला भी कि विना धारके ही हथियार रखे रहें।

ठाकुर साहवने हँसकर जवाव दिया—हाँ, एकवार पाला पड़ा था। किन्तु तव भी मैंने हर तरहकी चेष्टामें इस विद्याको हाथ ही में रखा। कहा:—

सर्द महरी यखने दी, सख़्ती मिली अलमाससे
तावुताँ आहनीय दिलका दिल सङ्गी बने।

वाह, वाह। एक समय कृष्णके हाथोंमें राधाके नाममें सधी बाँसुरी जैसी लीलामय होकर वजती थी उसी भावसे इनके पूर्व पुरुषोंके हाथोंमें

प्रेमकी तलवार खेलती थी। वैसे ही लीलामय खेल श्रीमान्के हाथोंसे उतरकर जीभपर जा बैठे हैं।

प्रेमका मूल्य प्राणोंके मूल्यसे है भी तो अधिक।

केवल इतना ही नहीं। यह भी मानना पड़ेगा कि लौकी कुम्हड़ा खाकर बंगाली दूरतक नहीं जा सकता। थोड़ा बहुत इधर-उधर हो सकता है। मगर कश्मीरी कोफ़्ते और मुर्ग़मुसल्लमकी तरी कहाँसे मिल सकती है।

आज नौकरीकी छटाई, इनक़लाब और जनताके विक्षोभके बाज़ारमें कौन किसी अज्ञात कविके समान बादशाहके हरमके बारेमें लिख सकता है।

तेरी कंचुकि की सुगन्धि ले बहता प्रात समीर।
मेरे हिय कोनेमें विकसित होते कुसुम अधीर॥

एकाग्र होकर चायमें चिम्मच चला रहा था। अकस्मात् रास्तेमें एक घोड़ेके पैरोंमें लगे नालकी आवाज़ सुनकर मुँह ऊपर उठाया। एक लम्बे-चौड़े ताँगेवालेने तड़ाकसे घोड़ेकी पीठपर चाबुक मारा। घोड़ेकी बहिनके साथ सम्बन्ध क़ायम करता हुआ वह चिल्लाकर बोला। अगर तीन मिनट-में अन्नासागरका तीन मीलका रास्ता पूरा न कर लूँ तो जनाब दिल्लीकी मसनद नसीब न हो।

मेरे मुँहसे अकस्मात् निकल गया—शाबाश ताँगेवाले। दिल्लीकी मसनद तुम्हारा ही इन्तज़ार कर रही है।

दिल्लीकी मसनद ही क्यों, जिस महाकालके हाथोंमें मसनद और महारथी पुतलियोंके समान नाचते हैं वह महाकाल किसीकी अपेक्षा नहीं करता। आज यहाँ बैठकर ठाकुरसाहबकी आधुनिक प्रेमकी कहानी सुन-कर मनमें हँसी आती है। लड़कपनमें भी एक प्रेमकी कहानी सुनकर राजवाड़ेकी कहानियोंकी ओर पहिले-पहल आकृष्ट हुआ था। वह था

राजवाड़ेके प्रथम वीर, मेवाड़ राजवंशके प्रतिष्ठाता बाप्पा रावलका प्रेमका खेल। बाँसुरीके सहज सरल मीठे सुरोंके समान।

उदयपुरसे दस मील दूर एकलिंग महादेवकी पूजा घरमें शिशु बाप्पाको छिपाकर रखा गया था। उसके पिता राजा थे। किन्तु शत्रुओंने उन्हें मार डाला था। माँ छिप-छिपाकर यहाँ भाग आई थी। राजपुत्र शिशु गाँवमें अहीर बालकोंके साथ हिल-मिलकर रहने लगा।

किन्तु उससे होता क्या है? आग यदि सच्ची आग है तो कभी छिप नहीं सकती। प्रातः-सायं गायें चरानेके लिए जानेपर बाप्पा बालकोंमें राजा होकर बैठता था। अहीर बालकोंको उसकी सभी बातें अच्छी लगती थीं। सब उसकी आज्ञा मानते थे।

पूर्णिमाके दिन झूला झूलनेका त्यौहार आया। सब बालक-बालिकाएँ झूलेमें बैठकर झूलने लगीं। देवताके मन्दिरके कुञ्ज वनमें गाँवके राजाकी कन्या भी आई। उसके साथ उसकी सखियाँ और अन्य लड़कियाँ भी आई थीं। किन्तु रस्सी भूलसे कोई नहीं लाया। अब क्या किया जाय?

बाप्पा कुञ्ज-वनकी ओर जा निकला। लड़कियोंने उसे घेर लिया और कहा—किसी तरह रस्सीका प्रबन्ध कर दो। नहीं तो हमलोग झूला न झूल सकेंगी।

बाप्पा राज़ी हो गया। रस्सी तो ला दूँगा। ख़ूब पैगें भरकर झूलना, किन्तु उसके पहिले हमारे साथ एक खेल खेलना होगा।

राजकन्याने पूछा—कौन-सा खेल?

उसने उत्तर दिया और कुछ नहीं। केवल ब्याह-ब्याहका खेल।

सब लोग राज़ी हो गये। बाप्पाकी चादर और राजकन्याकी ओढ़नी बाँध दी गई। उन दोनोंके चारों ओर दो सौ कन्याएँ परस्पर हाथ पकड़कर चारों ओर घूम-घूमकर नाचने लगीं। विवाहके बारेमें वे लोग इतना ही जानते थे, इतना ही समझते थे। वे लोग ख़ूब उमंगसे उनके चारों ओर

घूम-घूमकर नाचीं। इसके बाद झूलना शुरू हुआ। सन्ध्याको सब लोग घर वापस चले गये। बात आई गई हो गई।

बाप्पाके साथी अहीर बालकोंने इस बातको किसीसे भी न कहनेका वचन दिया।

इधर बाप्पा जिन गौओंको चरानेके लिए ले जाते थे, उनमें एक गायने शामको एक बूँद भी दूध देना बन्द कर दिया। गाँवके बूढ़ोंने कहा कि शायद बाप्पा चोरी करके दूध पी लेता है। किन्तु बाप्पा चोरी क्यों करता? वह स्वयं ही अपनी गायोंपर कड़ी नज़र रखता था। उसने देखा कि वही गाय अपनी झोपड़ीसे चुपचाप एक शिवलिंगके पास चली जाती है और अपना दूध महादेवके मस्तकपर अपने आप बहाकर चढ़ा देती है।

शिवलिंगके निकट ही एक महापुरुष ध्यानमग्न बैठे थे। बाप्पाने उनका ध्यान भंग कर दिया। उस दिन उनका साक्षात्कार एक दिव्य जीवनसे हुआ। महापुरुषने उन्हें मन्त्र दीक्षा दी। वे जान गये थे कि यह बालक अहीर नहीं किन्तु राजपूत है और आगे चलकर यह सबसे बड़े राजवंशकी प्रतिष्ठा करेगा।

दीक्षाके बाद बाप्पाने स्वप्नमें भगवती भवानीको देखा।

माँ भवानी बाघपर चढ़कर और लाल वस्त्र पहनकर आई थीं। उन्होंने बाप्पाको बर्छा, तीर और धनुष दिये और विश्वकर्मा द्वारा तैयार की हुई दुधारी तलवार दी। केवल उस तलवारका वज़न ही मनुष्यके आधे वज़नके बराबर था।

पृथिवीपर महापुरुषका काम समाप्त हो गया। दूसरे दिनके लिए उन्होंने बाप्पाको शिवलिंगके पास आनेको कहा।

किन्तु भाग्यचक्रसे उस दिन बाप्पा सबेरे देरसे सोकर उठे। महापुरुषसे फिर भेंट न हो सकी। उन्होंने आकाशमें देखा कि इन्द्रके रथपर अप्सराएँ चली जा रही हैं और उनके बीचमें महापुरुष रथपर बैठे हैं। मृदुहास्यसे वे बोले—वत्स, ऊपर देखो। ऊपरकी ओर देखते-देखते बाप्पा अन्य मनुष्यों-

की अपेक्षा अधिक ऊँचे और बलवान् हो गये। उनके शरीरमें असीम बल आ गया।

अवाक् होकर बाप्पा घर लौट गये और अपनी माँको समस्त बातें बतलाईं। और तभी बाप्पाको माँसे यह भी मालूम हुआ कि वह अहीर बालक नहीं, किन्तु राजपुत्र है।

यह सुनकर बाप्पाने प्रतिज्ञा की कि वह अब गौएँ नहीं चरावेगा। एक वीर मनुष्यकी तरह भाग्यका सन्धान करेगा।

इधर राजकन्याके विवाहका समय आया। किन्तु उसकी जन्मकुण्डली देखकर पुरोहित बोल उठे—महासर्वनाश, इस कन्याका तो अभी हाल हीमें विवाह हो चुका है।

डाँट खानेपर रोती हुई राजकन्याने स्वीकार किया कि उस दिन खेल-खेलमें उसका विवाह हुआ था। केवल उसीके साथ नहीं, किन्तु गाँवकी दो सौ कन्याओंके साथ। हाथमें-हाथ देकर गठबन्धन किया गया था। वृक्षके चारों ओर सप्तपदी हुई थी—और विवाहमें बाक़ी क्या रहा।

बाप्पा अपने शैशवके आश्रित गाँव, दो सौ ब्याह की हुई कन्याओंके बापके गाँवको छोड़कर चल दिये।

उन्होंने चित्तौड़पर अधिकार कर लिया और वहीं राज्य करने लगे। किन्तु लड़कपनमें खेल-खेलमें ब्याही हुई स्त्रियोंको न भूल सके।

किन्तु राजस्थानके प्रेमकी कहानी पुरुषको लेकर नहीं चलती है। वहाँ नारी ही महीयसी है। राजवाड़ेकी नारी ही राजसी है।

अन्तिम स्वाधीन हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराजने गोरीके साथ अन्तिम युद्धमें जानेके पूर्व सब सामन्तोंके साथ परामर्श किया था। किन्तु किस कौशलसे युद्ध किया जायगा, इसका विचार करनेके लिए वे अन्दर महलमें संयुक्ताके पास गये। संयुक्ताने जो उत्तर दिया था वह समस्त पृथिवीमें, जहाँ नारीने अपनी स्वाधीनता, अपना अधिकार नहीं पाया है, वहाँकी नारियोंके मनकी

बात है। उन्होंने कहा था—'स्त्रीसे क्या परामर्श चाहते हैं ? पृथिवीमें सब कहते हैं कि उसके बुद्धि नहीं होती। वह यदि सत्य बात कहती है तो कोई उसपर कान नहीं देता।···विज्ञ ज्योतिषी भी ग्रह-नक्षत्रोंकी गतिविधिको पुस्तक देखकर गुनते हैं। किन्तु नारी पोथीका कुछ भी नहीं जानती। भूख-प्यासमें हम तुम्हारे साथ समान भावसे रहना चाहती हैं। मैं हूँ सरोवर और तुम हो हंस। मैं नहीं होऊँगी तो तुम कहाँ रहोगे।

यहाँ हंसकी बात सोचकर मुझे एक राजसी राजकन्याकी कहानी याद हो आई। बादशाह औरङ्गज़ेबका प्रताप जब चरम-सीमापर था तब उसने रूपनगरकी रूपसी राजकन्याको बुलवा भेजा। रूपनगर राजपूतानेका एक छोटा-सा राज्य था। उनके लिए दिल्लीश्वरकी आज्ञाको अमान्य करना सम्भव नहीं था। इस सन्देशके साथ दो हज़ार घुड़सवार भी आये थे। बादशाहकी जो बेगम बनेगी उसके लिए उपर्युक्त सम्मान भी तो होना ही चाहिए।

किन्तु रूपनगरने इस विवाहके निमन्त्रणका सम्मान कैसा किया इसे बङ्किमचन्द्रके 'राजसिंह' पढ़नेवाले जानते हैं। राजस्थानमें उस समय मेवाड़के राणा राजसिंहका घरों-घरोंमें जयगान हो रहा था। क्या वे इस असहाया राजकन्याकी रक्षा नहीं करेंगे ? यह ठीक बात है कि अम्बरके समान बड़े राजा तकने दिल्लीके हरममें कन्या भेजकर आत्मरक्षा की थी। किन्तु यदि कोई राजपूत-नारी अपने वंशका सम्मान है, तो हिन्दू नारीकी धर्मरक्षाके लिए आश्रय-भिक्षा माँगनेपर क्या राजपूत वीर आश्रय न देगा ? राजहंसिनी क्या बगुलेकी संगिनी बनेगी ? विशुद्ध वंशकी राजपूतनी क्या वानर मुख बर्बरकी स्त्री बनेगी ?

रूपसी भी वसुन्धराके समान वीरभोग्या है, यह बात भी रूपनगरीमें औरङ्गज़ेबके निमन्त्रणने बतला दी। राणा राजसिंहकी वीरता और कीर्तिपर मुग्ध होकर राजकन्याने पहिले हीसे उन्हें आत्मसमर्पण कर दिया था। न बहुत दिनोंका परिचय था, न प्रथम दर्शन ही हुए थे। राजपूतनीकी

ओरसे यह सहज और स्वाभाविक था कि केवल उनकी वीरताकी कहानियाँ सुनकर ही उनसे प्रेम करने लगे।

वीरपूजा उसकी सृष्टि है और वीरत्व उसमें रंग भर देता है। शेखसादीकी एक कविता है :—

चह जने हिन्दी काशदार आशिके मरदाना नेस्त
शकिस्ता व बारे शाम कुशता कोर परवाना नेस्त

"प्रेम करनेवाली हिन्दू कन्याके समान साहसी और कोई नहीं है। सब परवाने बुझी हुई मोमबत्तीकी लौसे चिपटकर मर नहीं सकते।"

किन्तु वही मोमबत्ती जब अँधेरेमें कामनाकी शिखा जलाये रखती है तब राजपूत-नारीमें साहसका अभाव नहीं रहता। अम्बरके अन्धकार प्रायः शीशमहलमें मोमबत्ती जलाकर काँचोंके बीचमें उसकी हज़ार-हज़ार छाया देखते-देखते ऐसी ही एक कहानी याद हो आई

जयसिंहने हाड़ा वंशकी एक राजकन्यासे विवाह किया था। जयपुरी कछवाहे मुग़लोंकी सभ्यताका रसपान भी करते थे। दिल्लीसे फ़ैशनमयी सुन्दरियोंके हाव-भाव, पहनना-ओढ़ना, आशिक माशूकके रंग-ढंग आते रहते थे। उस समयकी हरमकी रूपवतियाँ आशिकी करना भी खूब जानती थीं।

फिर राजपूतोंके अन्दर महलोंमें वह कम क्यों हो? हिन्दू-शास्त्रोंमें प्रिय-प्रसाधन एक विद्या है। उसपर दिल्लीसे नयी ताज़ी बातें आती रहती थीं। जयपुरकी सुन्दरियाँ अपने लहँगेका घेरा छोटा करने लगी थीं। कैसी बेशरमीकी बात।

रङ्गीन घाँघरेका नीचेका भाग किंकिणीके साथ अम्बरके फ़र्शके पत्थरोंपर झूम-झूमकर नाचता था। बिना बाधाके पुरुषोंके मनमें झङ्कार करता था।

जयसिंहने अपनी नई रानीके घाँघरेके लम्बे झूलको देखकर हँसी-मज़ाक

करना शुरू किया। जयपुरकी सुन्दरियाँ अपने रूपको दिखाना जानती थीं। मन लुभाना जानती थीं। कोटाकी सुन्दरी क्या पीछे रह जायगी।

कोई उत्तर न देकर उसने घाँघरा छोटा करनेके लिए कैंची मगवाई। साथ-ही-साथ उसने यह कहा—क्या? अभिमान नहीं, नयनवाण नहीं, यहाँ तक कि कोपभवन तक नहीं। उसकी मुक्ति स्वामीकी तलवारमें है। और यदि किसी दिन पतिदेवताने उसके मान-इज्ज़तके साथ बेअदवी की तो उसकी हड्डियाँ-हड्डियाँ तक यह समझा देंगी कि अम्बरके मर्दोंके छुरी चलानेकी अपेक्षा कोटाकी कन्याएँ तलवार चलानेमें अधिक बहादुर हैं।

गनौरकी रानी अपने स्वामीके पास परलोकमें इसी तरह वीर महिमा-के साथ चली गई। वे एकके-बाद-एक पाँच दुर्ग हार गये। पठान सेना किसी तरह रोके न रुकती थी। उसका स्वामी युद्धमें मारा गया। नर्मदा-के किनारे अन्तिम हार हो जानेपर पठान सेनापतिने रानीके पास प्रस्ताव भेजा कि अब तो सब कुछ समाप्त हो गया, रानी अपने देश और मेरे हृदयपर राज्य करके सब ओरसे सुरक्षित रहेगी। हाथों-ही-हाथ उत्तर पानेके लिए खान नीचे राजभवनमें प्रतीक्षा करने लगा।

रानी राज़ी हो गई। केवल इतना ही नहीं, उसने ख़ानको एक चिट्ठी लिखी जिसमें उसकी युद्ध और नारीके प्रति वीरता दिखानेकी प्रशंसा की गई थी। यह भी लिखा था कि उसने युद्ध ख़ूब शिवेलरीसे किया है। और ख़ानको उसने स्वामी रूपमें वरण कर लिया है। उसने अपने हाथोंसे विवाहकी पोशाक सजाकर भेजी। खान वरवेशमें आयेगा, वरनारी उसे ख़ूब धूम-धामसे उपयुक्त भावसे वरण करेगी। रानीके साथ विवाह करनेके लिए उचित आयोजन भी तो करना होगा।

केवल दो घण्टेका समय था। इसीमें विवाहका समस्त आयोजन पूरा हो जाना था। समय जितना कम था, धूम-धाम उतनी ही अधिक की जा रही थी। नौबतके स्वरोंमें लोग लड़ाईके बाजोंको भूल गये। लोग कहने लगे कि वीरतापर मुग्ध होकर रानी प्रेममें पड़ गई। उन्होंने अपने हाथोंसे

ख़ानको पोशाक भेजी। जिसमें गनौरके राजवंशके सब बहुमूल्य रत्न जड़ दिये गये थे। उसे देखते ही खानकी छाती फूल उठी। इस तरह अकस्मात् वीरताकी प्रशंसा और प्रेम पाकर वह दिशाहारा हो गया। रानीका रूप देखकर वह आत्महारा पहले ही से हो गया था। उसकी मोहिनीके प्रभावसे वह अपनेको बिलकुल हार बैठा। वक़्त काटे नहीं कट रहा था। मिलनकी घड़ीके इन्तज़ारमें वह व्याकुल हो रहा था।

इधर खानका शरीर गरम हो उठा। उसने सोचा कि प्रेमका ताप ऐसा ही होता है। एक तो उसने लड़ाई जीतकर राज्य पाया, फिर उसकी बहादुरीपर रीझकर रानी भी उसे मिल गई—यह तो सबसे बड़ी जीत है। पृथ्वीके किस वीरके भाग्यमें इस तरह प्रेम मिलता है। खानका शरीर और मन दोनों गरमा उठे।

सरूर लानेवाले शरबतकी अब और ज़रूरत नहीं है। मन उतावला हो उठा। शरीरमें आग-सी जल उठी। ठंडा पानी ही काफ़ी है।

कुज्जेमें ठंडा पानी दिया गया, सखियाँ ज़ोरोंसे झालरदार पंखोंसे हवा करने लगीं। रास-शय्या तैयार की जा चुकी थी।

खानने शीघ्रतासे अपना वरवेश खोल डाला। यह क्या शय्यापर किसी दूसरेके साथ जानेकी तैयारी हो रही है? मिलनरात्रिकी परम लग्नमें यह और कौन आ गया?

हाँ आया। और एक ही पथसे दोनों चले गये। एक ही समय।

गरमी और सहन न कर पानेके कारण खानने वरवेश उतारकर फेंक दिया। किन्तु तब तक उस पोशाकने अपना काम अच्छी तरहसे कर दिया था। रानीने भी अपना वधूवेश उतार दिया। गम्भीर भावसे बोली—तुम्हें बता देना चाहती हूँ खान, कि तुम्हारा समय पूरा हो चुका। हमारा मिलन और विच्छेद एक ही समय शुरू हुआ। इस पोशाकमें विष मिला हुआ है। विषकी ज्वालासे तुम अभी मरोगे। और मैं भी अपने स्वामीके पास जाती हूँ।

किसीके कुछ कहनेके पूर्व, या बाधा देनेके पूर्व रानीने दुर्गकी चोटीसे नीचे नर्मदामें कूदकर आत्महत्या कर ली। खान भी विषकी ज्वालासे मर गया, उसकी क़ब्र भोपालके मार्गपर अब भी देखी जा सकती है।

लोगोंका कहना है कि उस क़ब्रपर सीरनी चढ़ानेसे ज्वरकी ज्वाला मिट जाती है।

पाठिकाएँ यहाँतक पढ़कर इस पुस्तकको सामनेसे खिसका देंगी। और थोड़ा-सा हँसकर कहेंगी—ये सब चण्डूखानेकी गप्पे हैं। मित्र लोग कहेंगे—इन राजा-महाराजाओंके बेकारके क़िस्से पढ़कर अपना दिमाग़ खराब क्यों किया जाय। उस समयके इतिहासको कहानियोंमें भुला दिया गया है। उस समयको फिरसे लेकर माथापच्ची क्यों की जाय। जो राजा-महाराजा अतीतकी वस्तु हो गये हैं उन्हें लेकर खींचातानी करनेसे लाभ? सौ वर्ष पूर्व भारतीय साहित्यने राजस्थानके गीत गाये थे। अब, गणतन्त्रके युगमें उसकी क्या आवश्यकता है।

मैं भी यही कहता हूँ। मेरा भी यही मत है। तब भी एक बात कहना चाहता हूँ। मुहल्लेके चबूतरोंपर बैठकर लड़कपनमें ही राजा-महाराजाओंकी तरह बड़े-बड़े काम करनेकी साध थी। मैंने थोड़ा-बहुत वही काम किया है। भेद केवल इतना है कि चबूतरेपर बैठनेके बदले मरुभूमिमें घूमते-घूमते पाषाणोंमें कान लगाकर उनके अतीतका रुँधा हुआ रोदन सुना है। सुनी है चिरकालकी राजवाड़ेकी राजसी कहानी। उसे आजकलकी पटभूमिकामें केवल थोड़ा-सा नया कर दिया है। एक हज़ार वर्षोंके बाद देश स्वाधीन हुआ है। नये जगत्में नये पथपर उसकी यात्रा प्रारम्भ हो गई है। आज ज़रूरत इस बातकी है कि शक्ति और प्रतापकी तरह लड़ाई न करके एक जगहपर भाई-भाई होकर रहें। आज कितनी ज़रूरत है सवाई जयसिंहकी तरह बाहर पृथ्वीसे समस्त नयी विद्याको अपने देशमें ले आनेकी, पद्मिनीके समान देशमें विपत्ति पड़नेपर पुरुषके साथ खड़े होकर सलाह देनेकी। एक दिन देश राजाओंका सिर दर्द था। आज

उसपर हम सबलोगोंका समान दायित्व है। त्याग और साधनामें सभीको जुट जाना है। जो गुण और वीरता हम केवल राजरानियोंमें देखते हैं उसे सब प्रतिष्ठित करना होगा। जन-साधारण ही इस युगके राजा-रानी हैं।

दिल्ली-कलकत्तेके राह घाटपर मनुष्योंका चेहरा दिनपर-दिन बदल रहा है। नये-नये कल-कारखाने, मस्तक उठाकर स्वाधीनताके आकाश-में हाथ बढ़ा रहे हैं। नियनके प्रकाशसे अमावस्याकी रात आलोकमय हो गई है। मैं यहाँ जैसलमेरके सीमाहारा मरुके बीचमें पथ खोजता हुआ चल रहा हूँ।

पचहत्तर मील दूर भारतका अन्तिम रेलवे स्टेशन है। पीछे पश्चिमकी ओर विराट् जैसलमेरका पीले पत्थरका दुर्ग छविके समान खड़ा है। उसके राजप्रासादकी चोटीको सूर्य सिन्दूरी रंगसे रंगकर अस्त हो गया।

शेष रात्रिके प्रथम आलोकमें एवरेस्ट दिखाई पड़ा। हिमालय मानवके सृजन, संहार और केलिकी उपेक्षा करता हुआ अनन्त शान्ति और सौन्दर्यमें खड़ा है। उसे अब मेघ और फ़ागकी माया ढँककर नहीं रख सकती।

दिनके अन्तमें अँधियारा होते ही मरुभूमिको अनुभव किया। मनुष्यके लोभ, हिंसा और मार-काटकी न जाने कितनी घटनाएँ इस बालूकी छाती-पर हुई हैं। तब भी उसकी शान्तिको और आभरणहीन रूपको कोई नष्ट नहीं कर सका। मोहन्जोदड़ो सभ्यतासे लेकर मध्ययुगकी अर्ध असभ्यता तक। ऊँटकी पीठपर सामान लेकर कारवाँ चल रहा है; घोड़ेकी पीठपर चढ़कर वीर वेशमें वर चल रहा है। हिंसामें उन्मत्त होकर सेनाएँ बढ़ रही हैं। थोड़ी देरके लिए मैं अपनी यात्राकी बात भूलकर ध्यानमें डूब गया।

किन्तु मनुष्य मरुदेशकी वीर-गाथाको नहीं भूला। न उनके वीरों और वीरांगनाओंको। इसीसे तो बार-बार दौड़कर यहाँ आता हैं। भग्नवेदियों

और दुर्गकी दीवालोंमें, मरुके झाऊके झुण्डोंमें कान लगाकर उनकी वाणी सुनता हूँ। दोनों हाथोंसे अंजलि उठाकर उनके प्राणरसकी धाराकी चाहनाके लिए खड़ा रहता हूँ। उस रसमें हमारे स्वाधीन देशके नये नरनारी नया जीवन पायेंगे। साधारण जीवनकी सीमा छोड़कर उनकी कहानी भी होगी महिमामयी—राजसी।